ग्रामोद्योग

—भारत के ग्रामोद्योगों का महत्व और विकास—

शोभालाल गुप्त

●

१९५९

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशकीय

हमारे देश की आबादी का बहुत बडा भाग गांवों मे रहता है और खेती-बारी करके अपनी गुजर-बसर करता है। ग्राम-वासियो की कोशिश रहती है कि उनकी रोजमर्रा की जरूरत की चीजे गावों मे ही तैयार हो जायं और शहरो से केवल उन्ही चीजो को लें, जो गावो मे नही जुटाई जा सकतीं।

जिस प्रकार खेती हमारे देश का मुख्य धंधा है, उसी प्रकार ग्रामोद्योगो का भी बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। छोटे-बड़े बीसियो उद्योग-धंधे प्राचीन काल से हमारे गावों और नगरो मे चलते आये है और चल रहे है। बड़े-बड़े कारखानो की भांति उनके लिए अधिक पूंजी की जरूरत नहीं होती, लोगो को काम मिल जाता है और उनकी मदद से ऐसे समाज का निर्माण होता है, जिसकी बुनियाद मे किसीका भी शोषण न होकर पारस्परिक सद्भाव और सहयोग की वृत्ति रहती है। हमारे राष्ट्र के आर्थिक संगठन मे ग्रामोद्योगो की आवश्यकता और उपयोगिता के बारे मे दो मत नही हो सकते।

इस पुस्तक में मौजूदा समय के प्रमुख उद्योगो के विकास का हाल दिया गया है। उसे पढ़कर मालूम होता है कि किस उद्योग की आज क्या अवस्था है और उससे देश को कितना लाभ मिल रहा है। यह भी पता चलता है कि उद्योगों को विकास का पूरा मौका मिले, तो उनके द्वारा देश की समृद्धि कितनी बढ़ सकती है।

हमें आशा है कि इस पुस्तक से पाठक अधिक-से-अधिक लाभ उठायेंगे।

—मंत्री

विषय-सूची

ग्रामोद्योग

: १ :

ग्रामोद्योगों का महत्व

भारत गावो का देश है। उसकी छत्तीस करोड की आबादी मे से ८३ फी सदी लोग गावो मे बसते है और खेती-बारी तथा उद्योग-धधो के द्वारा अपनी गुजर-बसर करते है। ग्राम और ग्रामोद्योगो की यह परपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। उसका मुख्य उद्देश्य यह रहा है कि इस विशाल देश के निवासियो मे एक बडे परिवार की-सी भावना रहे, लोग मिल-जुलकर काम करे और जहातक संभव हो, ग्रामो की इकाइया अपनी जरूरत की चीजे आप पैदा कर ले। इसके अलावा हमारे आर्थिक संगठन की बुनियाद मे एक चीज और भी रही है। वह यह कि सब लोगो को काम मिले, हाथ-पैर की मेहनत की सबको सुविधा रहे और काम कम पूजी मे चल जाय।

हमारे देश मे ग्रामोद्योगो को सदा से प्रोत्साहन मिलता रहा है। यही कारण है कि किसी जमाने मे यहापर ऐसी-ऐसी वस्तुओ का निर्माण हुआ है, जिन्हे देखकर विदेशी लोगो तक को दातो तले उगली दबानी पडी है।

विज्ञान ने आज दुनिया का नक्शा बदल दिया है। हमारे देश मे भी बहुत-से परिवर्तन हुए है। हमारा ध्यान आज अपने प्राकृतिक साधनो का पूरा-पूरा उपयोग करके देश की खुशहाली को

बढाने की ओर जा रहा है। उसके लिए अनक योजनाए बनी है और उन्हे कार्यान्वित करने के लिए प्रयत्न भी हो रहे है। सच बात यह है कि हमारे यहा प्राकृतिक साधनो की कमी नही है। नदियो को बाधकर और नहरे निकालकर भूमि को सीचा जा सकता है और वैसा किया भी जा रहा है। अनाज, गन्ना, कपास, तिलहन, पटसन आदि विविध पदार्थ हमारे यहा पैदा होते है। उनका उत्पादन बढे, इसके लिए अनेक योजनाए चालू हे। हमारी भूमि के गर्भ मे तरह-तरह के खनिज पदार्थ भरे पडे हे। कोयला, मेग-नीज, अभ्रक, तेल आदि अनेक चीजे यहा निकाली जाती है। उनका पूरा उपयोग करने की चेष्टा हो रही है। इस सबसे देश को लाभ होगा, इसमे कोई सदेह नही है। लेकिन आज की सबसे बडी समस्या यह है कि हमारे देश के काम करने योग्य हर व्यक्ति को काम मिले। विज्ञान ने जो साधन खडे किये है, उनकी हम उपेक्षा नही कर सकते। देश मे बडे उद्योग भी चलेगे। लेकिन हमको ऐसी योजना बनानी होगी, जिससे कोई भी आदमी वेकार न रहे।

हमारे देश मे पुराने जमाने मे ऐसे ग्राम और कुटीर-उद्योग चलते थे, जो लाखो आदमियो को रोजगार देते थे। उनकी यह ताकत आज भी बनी हुई है। बडे उद्योगो की होड के कारण छोटे उद्योग-धधो की अवनति हुई है। हमको उन्हे फिर से जिलाना और बढाना होगा। उनकी रक्षा करनी होगी। उनसे देश की बेकारी की समस्या को हल करने मे बडी मदद मिल सकती है। हमारे प्रधान मत्री प० जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही कहा है—"हम अपने वडे उद्योगो को चाहे जितना बढावा दे, पर यह जरूरी है कि हम छोटे पैमाने के और कुटीर-उद्योगो की उन्नति पर भी खास जोर

दें। कांग्रेस ने हमेशा छोटे उद्योगों को बढ़ावा दिया है। आज उनकी तरक्की की जरूरत पहले से भी कहीं ज्यादा अहमियत रखती है

ग्रामोद्योगों की एक झांकी

क्योंकि और किसी भी तरह से हम बेरोजगारी दूर नहीं कर सकते।"

गावो के लोगो को शहरो मे जाना पडता है। ग्राम-परिवार खड-खड हो जाते है। लेकिन ग्राम और कुटीर-उद्योगो मे ऐसा नही होता। गाव का कारीगर गाव मे ही अपना धधा चला सकता है। अपने बाल-बच्चो के साथ रह सकता है। वह किसीका मुहदेखा नही होता। अपनी मर्जी के अनुसार काम कर सकता है। उसे अधिक पूजी की भी जरूरत नही होती और न उसके औजार ही पेचीदा होते है। उन औजारो को आसानी से काम मे लाया जा सकता है।

खेती हमारे देश का मुख्य धधा है। किंतु खेती मे बहुत लोग नही खप सकते है। खेती की जमीन थोडी है और उसपर निर्भर लोगो की सख्या अधिक है। कही-कही एक फसल होती है, कही-कही दो। दूसरे, खेती मे किसान को कुछ ही महीने काम रहता है। चार महीने से लगाकर आठ महीने तक वह बेकार रहता है। उसे सहायक धधे की जरूरत है, जिसे वह खेती के साथ-साथ कर सके। फिर हमारे देश की आबादी बडी तेजी से बढ रही है। साल मे पचास लाख बच्चे पैदा हो जाते है। बेरोजगारी की इस समस्या को सुलझाने मे ग्राम और कुटीर-उद्योग हमारी बडी मदद कर सकते है।

देश अब स्वतत्र हो गया है। अपनी अर्थ-नीति आप तय कर सकता है। भारत-सरकार का ध्यान गावो की उन्नति की ओर गया है। गावो के खुशहाल होने पर ही देश वास्तव मे खुशहाल हो सकता है। गावो के जीवन मे ग्राम और कुटीर-उद्योगो का महत्वपूर्ण स्थान रहा है और भविष्य मे भी रहेगा। इसीलिए देश के विकास की पाचसाला योजनाओ मे ग्रामोद्योगो को उचित स्थान दिया जा रहा है। प्रथम आयोजना के

चार वर्षो मे ग्राम, कुटीर और छोटे उद्योगों पर पद्रह करोड़ रुपया खर्च किया गयाऔर पाचवे वर्ष के बजट मे पद्रह करोड रुपये के खर्च की व्यवस्था की गई थी। दूसरी पचवर्षीय आयोजना मे उनके लिए दो सौ करोड़ रुपया रखा गया है। उनमे खादी, हाथकरघा, रेशम, तेलघानी, धान (चावल) कुटाई, गुड और खाडसारी, चमडा, कागज, दियासलाई, साबुन, नारियल की दाढी और विभिन्न दस्तकारियों का हम यहा उल्लेख करेगे, जिनकी मदद से लाखो आदमियों की रोटी और रोजी का सवाल हल हो सकता है।

: २ :

कपड़ा-उद्योग

हम पहले बता चुके है कि पुराने जमाने मे हमारे देश मे उद्योग-धन्धो और कला-कौशल का खूब विकास हुआ था। तरह-तरह का माल तैयार होता था और समुद्र तथा खुश्की के रास्ते दुनिया के दूसरे देशो को जाता था। प्राचीन भारत के लोग अच्छे जहाज बनाते थे और उनके द्वारा दूसरे देशो के साथ व्यापार होता था। बदले मे विदेशो से सोना-चादी आदि कीमती पदार्थ भारी मात्रा मे मिलते थे। भारत मे विदेशी व्यापार के कारण अनेक बदरगाहो का निर्माण हुआ और व्यापारिक मडिया कायम हुई, जो बडे-बडे नगरो मे बदल गई। भारत का व्यापार रोम, यूनान, मिस्र, सीरिया, बेबीलोन, ईरान, चीन, जापान, स्याम, हिदचीन, मलाया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदि सभी देशो के साथ होता था। अफ्रीका, यूरोप और एशिया तीनो महाद्वीपो के देशो मे भारत के माल की माग और खपत थी। भारत के व्यापारी, किसान और कारीगर सभी खुशहाल थे। उसके वैभव और खुशहाली की बाते दूर-दूर तक फैल गई थी और दुनिया के लोग इसे सुनहरा देश समझते थे। दूसरे देशो के जो यात्री भारत मे आये, वे उसके वैभव को देखकर मुग्ध हो गये और उनको दातो तले उगली दबानी पडी। उन्होने जो वर्णन लिखे है, वे भारत के पुराने वेभव की गवाही देते है।

भारत का कपडा-उद्योग खास तौर पर बहुत ही विकसित

था । भारत के प्राचीनतम ग्रथ ऋग्वेद से पता चलता है कि बहुत पुराने जमाने मे भी भारतीय कपड़ा बुनने की कला जानते थे । सूती और रेशमी दोनो प्रकार का कपडा यहा बुना जाता था । खास-खास किस्म के कपड़े खास-खास स्थानो मे बनते थे और उनके लिए वे स्थान प्रसिद्ध हो गये । दक्षिण भारत मे सूती कपडो की छपाई बहुत बढिया होती थी । मछलीपट्टम की छीट प्रसिद्ध थी । कालीकट मे बहुत महीन कपडा बनता था । ढाका की मलमल तो जगत-विख्यात थी । मध्यप्रदेश का बुरहानपुर स्थान जरतारी के कपडे के लिए प्रसिद्ध था । भारत से विदेशो को जो कपडा भेजा जाता था, उसकी करीब दोसौ किस्मे थी । भारतीय कपडे का बढियापन उसके नामो से ही प्रकट हो जाता है । एक मलमल को कहते थे 'आबे रवा' यानी बहता हुआ पानी, तो दूसरी थी 'बफ्ते हवा' यानी बुनी हवा और तीसरी थी 'शबनम' यानी ओस । विदेशी यात्री मार्को पोलो ने भारतीय कपडे की तुलना मकडी के जाले से की है । मलमल का पूरा थान अगूठी के भीतर से निकल सकता था और वह हौदे समेत हाथी को ढक सकता था । राजघराने की स्त्रिया जब ऐसे बारीक कपडे पहनती थी, तो उनके अग दिखाई देते थे । एक बार बादशाह औरगजेब ने अपनी लडकी को ऐसा कपडा पहने देखा, तो उसे बडा क्रोध आया । किंतु उसे बताया गया कि पुत्री ने कपड़े को अनेक तह करके पहना है । भारत ने १७वी सदी मे चौबीस लाख पौड यानी तीन करोड साठ लाख मूल्य का छ करोड वर्ग गज सूती कपडा विदेशो को भेजा था । इस तरह ईसा के दो हजार वर्ष पहले से लगाकर ईसा के बाद १७वी-१८वी सदी तक भारत का कपड़ा-उद्योग फूलता-फलता रहा । राजा और बादशाह बदलते रहे, लडाइया

भी हुई, किंतु कारीगरो के कला-कौशल और उद्योग-धधो पर राजनीतिक उलट-फेर का खास असर नही हुआ। उस समय तक भाप और बिजली से चलनेवाली कपडा बुनने की मशीनो का आविष्कार नही हुआ था। भारत का कपडा-उद्योग सीधे-सादे औजारो की मदद से कुटीर-उद्योग के रूप मे चलता था और उसका तैयार माल देश और विदेश मे खपता था।

मनुष्य-जीवन की दो मुख्य जरूरते है—भोजन और कपडा। इन दोनो जरूरतो के बारे मे देश स्वावलबी था। खेतो मे अनाज पैदा होता था और लोगो को कपडा बनाने की कला आती थी। किसान खेत मे अनाज के अलावा कपास भी उगाता था और देश मे रूई से सूत कातने का आम रिवाज था। घर-घर और गाव-गाव चरखे चलते थे। खेती और घर के दूसरे कामो से फुरसत मिलती तो मर्द और औरते चरखा कातते थे। स्त्रिया विशेष रूप से चरखा कातती थी। गावो और कसबो मे कपडा बुननेवाले बुनकर होते थे, उनको सूत देकर लोग अपनी जरूरत के हिसाब से कपडा बुनवा लेते थे। इस तरह सारे देश के कपडे की जरूरत देश मे ही पूरी हो जाती थी और लोगो को कपडे के लिए बहुत थोडा खर्च करना पडता था। गावो मे पैसे की जरूरत ही नही पडती थी। बढई, लुहार, कुम्हार, बुनकर, चर्मकार आदि को किसान अपने खेत की उपज मे से अनाज दे देता था और इस तरह एक-दूसरे के सहयोग से किसानो और कारीगरो दोनो का काम चल जाता था। भारत के गाव स्वय-पूर्ण, आत्म-निर्भर, सुखी और सतुष्ट थे।

किंतु सत्रहवी-अठारहवी सदी मे औद्योगिक क्राति हुई। बडी-बडी मशीने चलने लगी और उनपर सस्ता माल तैयार

होने लगा। उसके लिए दुनिया मे बाजारो की खोज शुरू हुई। भारत मे अंग्रेजो का आगमन हुआ और व्यापार करते-करते वे यहा के राजा बन बैठे। उन्होने देश का व्यापार अपने हाथ मे ले लिया। अपने देश के माल की खपत करने के लिए उन्होने यहा के उद्योग-धधो पर तरह-तरह के प्रतिबध लगाये। अत यहा के कपडा-उद्योग की अवनति शुरू हो गई। कताई का रिवाज कम होता गया और बुनकरो को बेकारी का सामना करना पडा। देश मे हर साल करोडो रुपये का कपडा विदेशो से आने और खपने लगा। जो देश दूसरे देशो को कपडा भेजता था, वही अब अपनी जरूरत के लिए भी विदेशों का मोहताज हो गया। इस देश से रुई दूसरे देशो को जाती थी और वे कपडा बनाकर यहा भेजते थे। भारत केवल कच्चा माल पैदा करनेवाला रह गया और दूसरे देश के तैयार माल का ग्राहक बन गया। इससे देश में गरीबी और बेकारी बढती चली गई। उसके पुराने वैभव और खुशहाली का लोप हो गया। भारतीय उद्योग-धधो और कला-कौशल के नाश की यह एक दर्दनाक कहानी है। आगे चलकर तो देश के भीतर भी कपडा-मिलो की स्थापना हुई। लोगो ने विदेशी कपडे के मुकाबले इन मिलो के कपडे को स्वदेशी की भावना से प्रेरित होकर अपनाया, किंतु कपडे का कुटीर-उद्योग तो नष्ट ही होता चला गया।

सबसे पहले महात्मा गाधी ने यह अनुभव किया कि भारत की गरीबी और बेकारी का रामबाण इलाज कुटीर-उद्योगो से ही हो सकता है। किंतु शुरु मे उनको चरखे और करघे का भेद मालूम न था। जब वह दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे, तो उन्होने अहमदाबाद के निकट सत्याग्रह-आश्रम कायम किया। वहा

कपडा बुनने के कुछ हाथकरघे लगाये गये, किंतु उनपर सूत मिल मे कता हुआ ही बुना जाता था। साथ ही देश मे ऐसी मिले खडी हो रही थी, जो सूत कातने और कपडा बुनने के दोनो काम करती थी। हाथकरघे पर कपडा बुननेवालो को मिलो का सूत पाने मे बडी कठिनाई का सामना करना पडता था। गाधीजी ने सोचा कि अगर मिलो से सूत मिलना बद हो गया, तो बुनकर बेरोजगार हो जायगे। उन्होने देश मे चरखे की खोज शुरू कराई। एक समाज-सेविका ने गुजरात के बीजापुर नामक स्थान मे मुस्लिम घरो मे चरखे के दर्शन किये। फिर तो गाधीजी के नेतृत्व मे देश मे चरखे को फिर से जिलाने का आदोलन शुरू हो गया। जो चरखे लोगो ने उठाकर ताक मे रख दिये थे, वे फिर से चलने लगे। काग्रेस ने खादी के नाम को देश को आजाद करने के अपने कार्यक्रम मे स्थान दिया। खादी की व्याख्या की गई कि चरखे पर हाथ से कते सूत और उससे हाथकरघे पर बुने कपडे को खादी कहा जायगा। काग्रेसजनो ने यही खादी पहनने की प्रतिज्ञा ली और नेहरूजी ने कहा कि खादी की पोशाक आजादी की वर्दी है। खादी का प्रचार देश मे बढने लगा और उससे लाखो आदमियो को काम मिल गया। काग्रेस ने खादी के काम को आगे बढाने के लिए 'चरखा सघ' नाम की सस्था कायम की और अब यह काम सरकार द्वारा मान्य अखिल भारतीय खादी और ग्रामोद्योग आयोग कर रहा है। खादी के काम मे पिछले ३५-४० वर्षो मे ही असाधारण उन्नति हुई है। आज खादी का कुटीर-उद्योग तरह-तरह का सादा और रगीन, बारीक-से-बारीक और आकर्षक नमूनो का कपडा तैयार करता है।

चरखे और खादी ने देश मे नई जागृति पैदा कर दी। उसने

"चर्खा वह मध्यवर्ती सूर्य है, जिसके गिर्द अन्य सब तारागण घूमते हैं।"
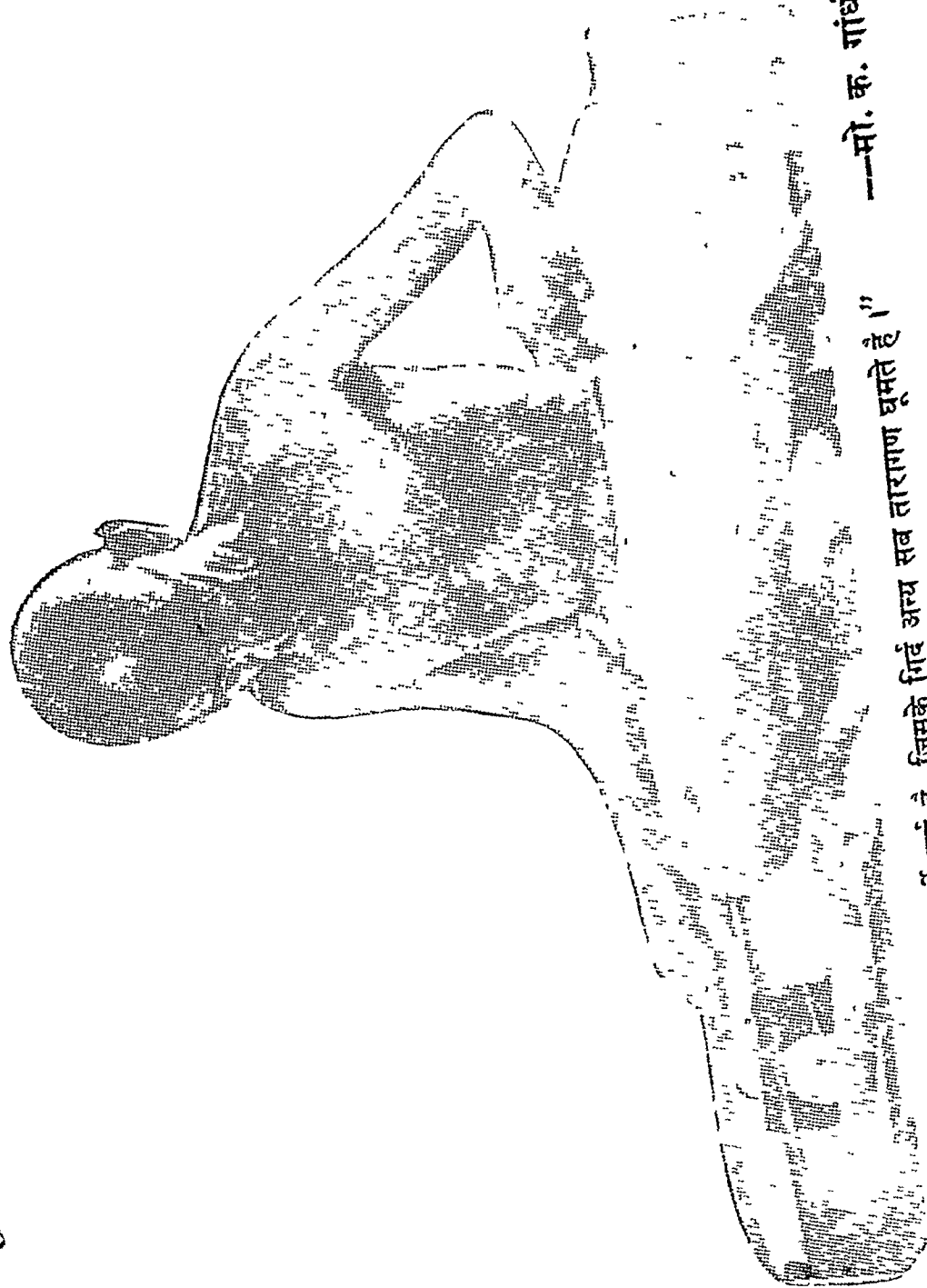
—मो. क. गांधी

स्वराज्य और स्वतत्रता का सदेश घर-घर फैलाया। लोगो के जीवन ओर विचारो मे क्राति ला दी। उनके रहन-सहन का ढग बदल गया। जो लोग किसी समय आराम की जिदगी बिताते थे, वे बिल्कुल सादगी के साथ रहने लगे। उनका हाथ से काम करने का सकोच दूर हो गया। उनमे देश के करोडो नगे-भूखो के प्रति प्रेम और आत्मीयता का भाव पैदा हुआ, जिसे उन्होने चरखे और खादी को अपनाकर प्रकट किया। चरखे का अर्थशास्त्र नैतिकता पर आधार रखता है। आपसी होड और कमजोर के विनाश का सिद्धात उसे स्वीकार नही। उसने कातने और बुननेवालो की बेबसी को दूर किया और उनमे आत्म-विश्वास पैदा किया। उन्होने अनुभव किया कि उन्हे जिदगी की लडाई लड़ने का एक मजबूत सहारा मिल गया है। चरखे ने छुआछूत की भावना को दूर किया, जिसकी वजह से लाखो व्यक्ति समाज से बहिष्कृत होकर रहते थे और तरह-तरह की कठिनाइया भुगतते थे। बुनकरो की गिनती अछूतो मे होती थी। चरखे और खादी ने उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारा और उनमे शिक्षा और सस्कारो का प्रचार किया। स्त्रियो का कातने का परपरागत धधा फिर से जीवित हो गया। वे परिवार की आय को बढाने लगी। चरखा और खादी ने पर्दा-प्रथा और अन्य सामाजिक कुरीतियो पर भी प्रहार किया। लोगो को शराब आदि नशीली वस्तुओ से दूर रहने और पवित्र जीवन बिताने की प्रेरणा दी। राष्ट्र के चरित्र को ऊचा उठाने मे चरखे और खादी ने जो योग दिया, उसकी कीमत नही आकी जा सकती। देश के लिए त्याग करने और मानवी भाईचारे की भावना का विकास करके उसने स्वराज्य की नीव को सीचा। हिंदू, मुसलमान, ईसाई आदि विभिन्न धर्मो को माननेवालो मे

एकता स्थापित की। चरखे और खादी का आर्थिक पहलू तो मजबूत है ही, क्योकि वह लाखो व्यक्तियो को मुख्य और सहायक धधा देता है, जो किसी और जरिए से नही मिल सकता, किंतु उसकी नैतिक भूमिका भी बहुत मजबूत है। वह सादा जीवन और उच्च विचार की कल्पना को सभव बनाता है।

हमारे देश के लिए खादी और ग्राम-उद्योगो की आर्थिक उपयोगिता स्वयसिद्ध है। भारत मे शहरो की सख्या सिर्फ तिहत्तर है और कसबे पाच हजार से अधिक नही है। शहरो और कसबो की कुल आबादी छ करोड है। कल-कारखाने और बडे उद्योग ज्यादातर शहरो और कसबो मे ही चलते है। गावो के लोग काम की तलाश मे शहरो और कसबो मे आते है, किंतु कल-कारखाने और बडे उद्योगो मे कितने आदमियो को काम मिल सकता है? शहरो और कसबो मे भी बेकारी बढ रही है। शहरो और कसबों के मुकाबले गावो की सख्या साढे पाच लाख है और उनमे उनतील करोड आदमी रहते हे। गावो मे खेती लोगो का मुख्य धधा है। खेती की जमीन तो बढ नही रही है और जनसख्या बढ रही है। इसलिए थोडी जमीन पर पहले से ज्यादा आदमी निर्भर रहने लगे है और उन सबको पूरा काम नही मिलता। कुल जनसख्या के हिसाब से पिछले पचास वर्षो मे काम करनेवालो का औसत घटता जा रहा है। सन १९०१ मे वह ५० प्रतिशत था, किंतु सन १९५१ मे वह ३९.९ प्रतिशत ही रह गया है। इसके मुकाबले काम करने-वाले लोगो पर निर्भर रहनेवाले लोगों का औसत बढ रहा है। वह सन १९०१ मे ४९ प्रतिशत से बढकर सन १९५१ मे ६० प्रतिशत हो गया है। दूसरे शब्दो मे इसका यह अर्थ हुआ कि बेकारो की सख्या बढ रही है। सन् १९५१ मे देहाती क्षेत्र मे

कमानेवालो की सख्या दस करोड थी और शहरी क्षेत्र मे खेती के अलावा अन्य कामो मे लगे हुए लोगो की सख्या चार करोड थी। इसके मुकाबले शहरी और देहाती क्षेत्र मे ऐसे लोगो की सख्या नौ करोड तिरसठ लाख है, जो साल मे ३०० दिन बेकार रहते है और साल मे ९० दिन बेकार रहनेवालो की सख्या दस करोड इक्कीस लाख है।

इन बेकारो और अर्द्ध-बेकारो को काम देने का सवाल है। कल-कारखानो और बडे उद्योगो मे उन सबको काम नही दिया जा सकता। गावो मे कल-कारखाने है भी नही और गावो को उजाडकर उनकी आबादी को शहरो मे नही बसाया जा सकता। उनको तो गावो मे उनके घरो मे ही काम देना होगा जिसे वे खेती के साथ-साथ या स्वतत्र रूप से कर सके। यह काम खादी और ग्राम-उद्योगो के जरिए दिया जा सकता। जब आलोचको ने चरखे के लिए यह कहा कि उससे तो दिनभर मेहनत करने के बाद मुश्किल से दो-चार आना रोज से ज्यादा नही कमाया जा सकता, तो गाधीजी ने उनको जवाब दिया कि चरखे को मै छोड सकता हू, किंतु दूसरा कोई ऐसा साधन तो बताओ, जिससे सब लोगो को इतनी या इससे ज्यादा आमदनी हो सके। किन्तु चरखे का कोई विकल्प पेश नही किया जा सका। चरखे को जिस तरह पिछले चालीस सालो मे लोगो ने अपनाया, उससे प्रकट है कि वे उसकी कीमत को पहचान गये है। परिवार की आय मे थोडी भी बढोत्तरी उनके लिए मददगार होती है।

हाथकताई-उद्योग की विशेषताए अनेक है। जिन लोगो को फुरसत है और थोडे-से भी पैसो की जरूरत है, उनको वह आसानी

से काम दे सकता है। कातने की कला आसानी से सीखी जा सकती है और लाखो स्त्री-पुरुप, बालक और बूढ़े उसे सीख चुके है।
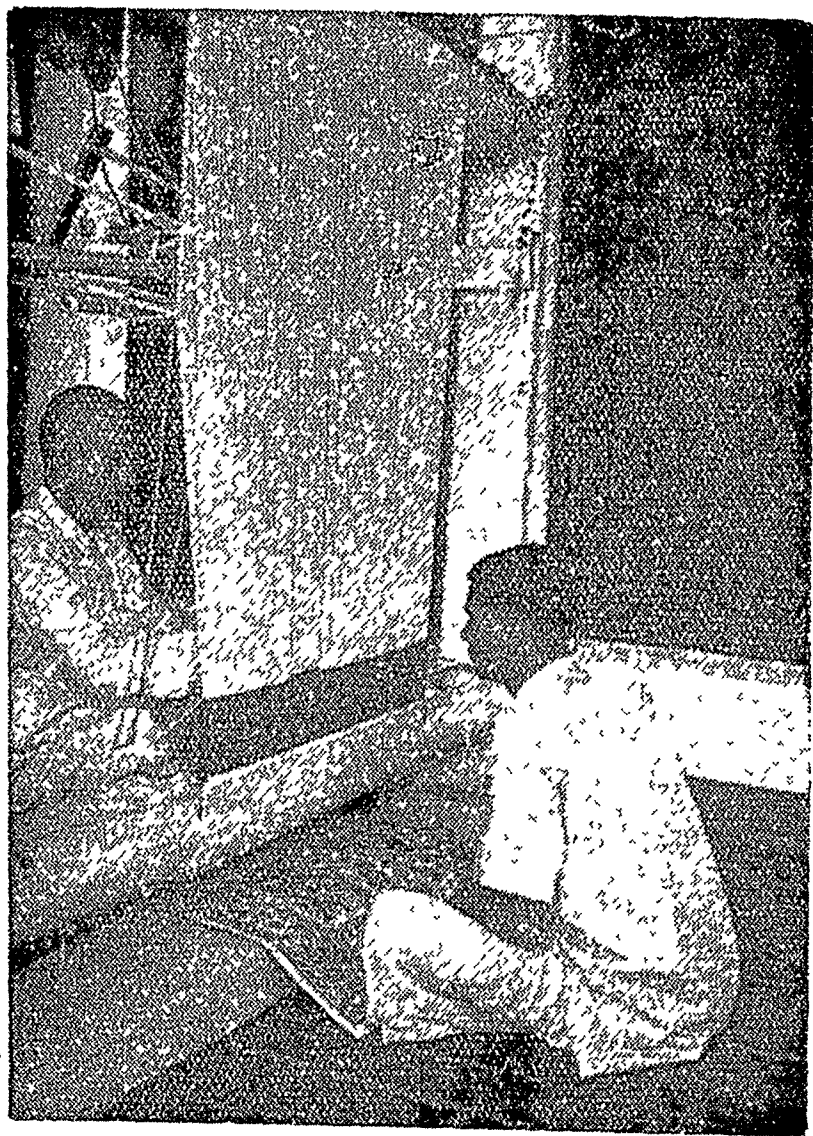
कपड़े की बुनाई

इसमे कोई बड़ी पूजी लगाने की जरूरत नही होती। चरखा बहुत ही सस्ती कीमत में तैयार हो जाता है। कातनेवाले का काम

दस-पद्रह रुपये मे चल जाता है। अकाल आदि दैवी सकटो के समय चरखे के द्वारा पीड़ितो को तुरत सहायता पहुचाई जा सकती है। उसके द्वारा करोडो रुपया जरूरतमद गरीबो मे बटता है। उससे लोगो को मिल-जुलकर काम करने की शिक्षा मिलती है। सन १९५७-५८ मे इस उद्योग ने आठ लाख पचास हजार कातनेवालो, एक लाख चौवालीस हजार बुनकरो और दस लाख तैतालीस हजार अन्य कारीगरो--बढई, लुहार, रगरेज, धोबी आदि को काम दिया। इसके मुकाबले कपडे की मिलो मे केवल आठ-सात लाख श्रमिक काम पा रहे है। देश की जरूरत का दो-तिहाई कपड़ा मिलो मे तैयार होता है। कुछ और मिले खोलकर देश की कपडे की बाकी जरूरत भी पूरी की जा सकती है। उनमे दो-तीन लाख मजदूरो को और काम दिया जा सकता है। किंतु हमारे सामने तो सवाल करोडो बेकारो और अर्द्ध-बेकारो को काम देने का है और यह सवाल इस तरह हल नही हो सकता। उसके लिए तो हमे खादी और ग्राम-उद्योगो को ही अपनाना होगा।

चरखे और खादी-उद्योग की एक और विशेषता ध्यान देने लायक है। कपडा-मिल की आमदनी मे से एक रुपये मे से चार आना मजदूरी और वेतन मे जाता है। इसके मुकाबले खादी-उद्योग मे रुपये मे से दस आने श्रमिक की जेब मे जाता है। ऊपर का प्रबध-खर्च रुपये मे तीन आने से अधिक नही पडता। अत इस उद्योग मे बीच के वर्ग के शोषण की कोई गुजाइश नही है।

खादी-उद्योग शुरू मे इस तरह चला कि देहातो मे खादी तैयार होती थी और उसे शहरो और कसबो मे उसे बेचा जाता था। इस तरह कातनेवालो, बुनकरो और दूसरो को मजदूरी के रूप मे लाभ मिल जाता था। किंतु बाद मे गाधीजी ने इस बात पर

जोर दिया कि लोग केवल मजदूरी के खयाल से यह काम न करें---उनको कपडे की अपनी जरूरत खुद ही पूरी करनी चाहिए। उन्होने कहा---"समझ-बूझकर कातो। जो कातो सो पहनो और और जो पहने सो काते।" इस तरह उन्होने कपडे के मामले मे स्वावलबन का आदर्श पेश किया। खादी को उन्होने व्यापारिक चीज नही रहने दिया। वह खादी के द्वारा गावो की अर्थ-व्यवस्था को मजबूत बनाना चाहते थे। अगर गाव खुराक और कपडे मे स्वावलबी हो जाय, तो फिर और बाकी क्या रह जाता है! जीवन की मुख्य लडाई जीत ली जाती है। गाधीजी ने अपने जीवन के अतिम वर्षो मे खादी-उद्योग के सामने एक क्रातिकारी विचार रखा। उन्होने कहा कि कातनेवाले को जीवन-निर्वाह लायक मजदूरी दी जाय। चरखा-सघ ने इसपर अमल भी किया और श्रमिको को बाजार की दर से ऊची मजदूरी दी गई। इस तरह अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे नैतिक मूल्य की स्थापना की गई।

जबसे चरखे की नये सिरे से खोज हुई, तबसे खादी तैयार करने के औजारो मे निरतर सुधार होता गया है। अबतक अनेक किस्म के चरखे तैयार हो चुके है। ग्राम-चरखा तो पहले से प्रचलित था ही। उसके बाद सावली-चरखा, बारडोली-चरखा, बास-चरखा, किसान-चक्र, यरवदा-चक्र आदि अनेक प्रकार के चरखे बने है। इन चरखो पर कातने का एक ही तकुआ होता है। पहले मोटा सूत कतता था। अब बारीक-से-बारीक सूत कतने लगा है। सूत कातने की रफ्तार भी बढी है। गाधीजी के भतीजे श्री मगनलाल गाधी ने एक ऐसा चरखा बनाया, जिसका चक्र पाव से घुमाया जाता है और जिसमे दो तकुए लगे है। उसमे दोनो हाथो से एक साथ सूत काता जाता है। यह 'मगन-चरखा' कहलाता

है। 'यरवदा-चक्र' पेटीनुमा चरखा है। उसका आकार बहुत छोटा है और वजन भी इतना कम है कि उसे उठाकर आसानी से अपने साथ कही भी ले जाया जा सकता है। इसके अलावा तकली पर भी सूत काता जा सकता है। तकली बास की भी बनती है और लोहे की भी और उसे आसानी मे अपने पास रखा और चाहे जहा ले जाया जा सकता है। तकली पर बच्चे बडे शौक से सूत कात सकते है और स्कूलो मे उसका व्यापक रूप मे प्रयोग हो सकता है। कपास से बिनौले निकालने, रुई को धुनकने और उसकी पूणिया बनाने आदि के औजारो और क्रिया मे भी पहले से बडा सुधार हुआ है।

अब एक नये चरखे का आविष्कार हुआ है, जिसे 'अबर चरखा' कहा जाता है। इस चरखे के मूल आविष्कारक श्री एकबर नाथ है। यह मद्रास राज्य के रहनेवाले है ओर स्वय एक किसान के पुत्र है। गाधीजी चाहते थे कि कोई ऐसा चरखा तैयार किया जाय जो परपरा से चलनेवाले चरखे से ज्यादा और अच्छा सूत कात सके और कतवारी को पूरा रोजगार दे सके। उनका खयाल था कि ऐसे चरखे की कीमत १००-१५० रुपये तक हो सकती है, किंतु वह पेचीदा नही होना चाहिए, उसका निर्माण देहात मे भी सभव होना चाहिए और हरकोई उसे प्रत्येक घर मे आसानी से चला सके। ऐसे चरखे के लिए चरखा-सघ ने एक लाख रुपये का इनाम भी घोषित किया था। शुरू मे अबर चरखा दो तकुओ का बना था। चरखा-सघ ने उसे पसद किया, उसके आविष्कारक को इनाम दिया और उसमे और सुधार करने के लिए हर तरह की मदद दी। पिछले वर्षो मे अबर चरखे मे अनेक सुधार हुए है, और खादी-ग्रामोद्योग आयोग ने देश मे उसको बडे पैमाने पर चलाने

का काम शुरु कर दिया है। अबर-परिश्रमालयो मे उसे चलाने की शिक्षा दी जाती है। तीन महीने मे आदमी यह चरखा चलाना सीख लेता है। पहले अबर चरखे के अलग-अलग दो हिस्से थे। एक हिस्से को बेलनी कहते है। इसपर धुनी हुई रुई से लबी पूणिया अथवा कच्चा सूत तैयार किया जाता है। इस कच्चे सूत से अबर चरखे पर पक्का सूत काता जाता है। अबर चरखे पर चार तकुए होते है। सूत लपेटने की उसपर नलिया लगी होती है। सूत अपने-आप कतता और इन नलियो पर लिपटता चलता है। कातनेवाले को सिर्फ उसका हत्था घुमाना पडता है। एक अम्बर चरखा पाच तकुओवाला भी तैयार किया गया है। अब एक सयुक्त अबर
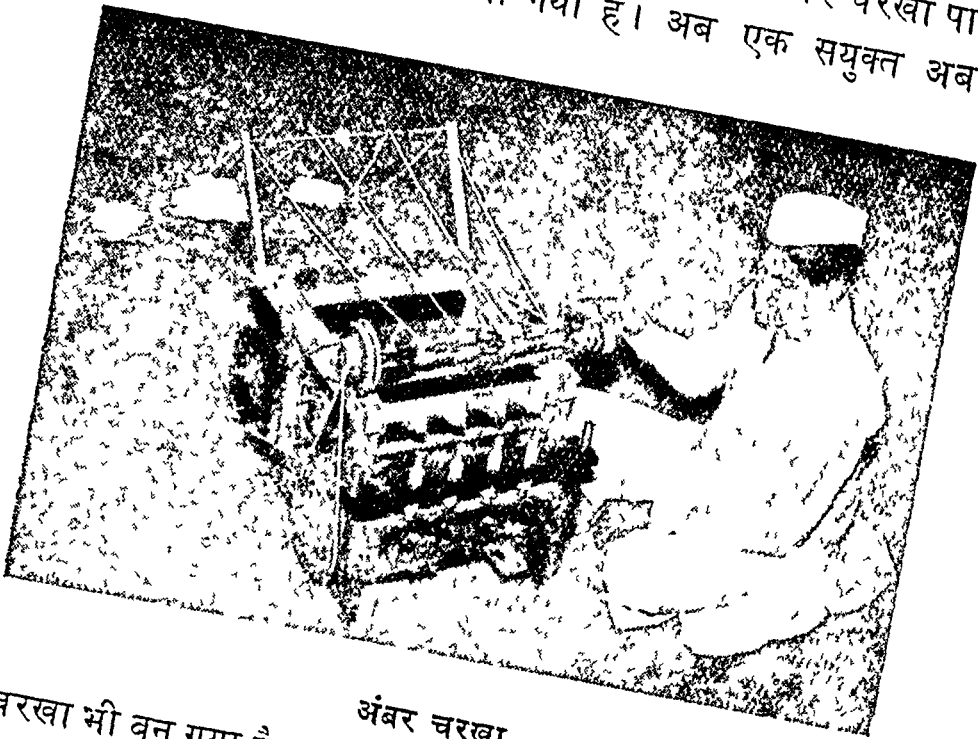
अंबर चरखा

चरखा भी बन गया है। पूणी का कच्चा सूत तैयार करने पक्का सूत कातने की क्रिया एक ही यत्र पर हो जाती है

छोटे कद का अबर चरखा भी बनाया गया है। उसपर दो तकुए होगे और उसे पेटी मे बद किया जा सकेगा। पाच तकुओ का जो अबर चरखा बना है, उसमे दो तकुओ पर कच्ची और तीन पर पक्की कताई होगी। सामान्य गति से उसपर आठ घटे मे ९-१० गुडी सूत काता जा सकेगा और दो आना प्रति गुडी के हिसाब से एक मजदूर रोज रुपया सवा रुपया कमा सकेगा। खेत-मजदूर को इससे कम ही मजदूरी मिलती है। पहले अबर चरखे की कीमत ९० रुपये थी और बेलनी की ३० रुपया। अब सयुक्त अबर चरखा ६० रुपये मे तैयार होने लगा है। अबर चरखे के साथ रुई को धुनने के लिए एक धुनाई मोढिया का भी आविष्कार हुआ है। इस औजार की कीमत ३५ रुपये है और उसपर एक घटे मे १०-१५ तोला रुई का पोल तैयार किया जा सकता है। इसके अलावा कपास ओटने का एक अलग औजार होता है।

हमारे देश मे एक किसान-कुटुब की औसत वार्पिक आय ४४७ रुपये और एक व्यक्ति की १०४ रुपया है। किसान-कुटुब का औसत वार्षिक खर्च ४६८ रुपये अनुमान किया गया है। आमदनी से खर्च अधिक होने पर वह कर्जदार ही हो सकता है। अबर चरखा उसकी आय मे अच्छी बढोतरी कर सकता है। अगर कोई प्रति-दिन अबर चरखे पर एक घटा काते, तो ३०० दिन मे वह इतना सूत कात सकता है कि उससे ७५ गज कपडा तैयार हो सकता है और वह आय मे ७५ रुपये की वृद्धि कर सकता है। आठ घटे रोज कातने पर ३०० दिन मे २४० रुपये कमाये जा सकते है। सन १९५७-५८ मे करीब दो लाख व्यक्तियो को अबर चरखा चलाने की शिक्षा दी गई और अबर चरखे पर करीब एक लाख नवासी

हजार व्यक्तियो को काम मिला। अबर चरखे का प्रचार दिनोदिन बढ़ेगा, किंतु साथ ही पुराने ढग का चरखा भी चलता रहेगा, क्योकि अभी हरकोई अवर चरखे की कीमत नही चुका सकता। यह आशा की जा सकती है कि अम्बर चरखे से कताई द्वारा श्रमिक को जीवन-निर्वाह के योग्य मजदूरी मिल सकेगी। कुछ दिन पहले हैदराबाद (दक्षिण) मे अवर चरखे का एक प्रदर्शन हुआ था। उसमे प्रधान मत्री श्री नेहरू भी उपस्थित थे। पद्रह सौ अवर चरखे एक साथ चल रहे थे और उनको चलानेवालो मे अधिकाश मुस्लिम औरते थी, जो कड़े पर्दे मे रहती है। उनका पर्दे से बाहर आना सामाजिक क्राति का सूचक है और उसका श्रेय अवर चरखे को है।

चरखे और हाथकरघे का चोली-दामन का साथ है। चरखे पर सूत काता जाता है और उसी सूत से हाथकरघे पर कपडा बुना जाता है। दोनो के योग से ही यह कुटीर-उद्योग लाखो व्यक्तियो को रोजगार दे सकता है। पुराने जमाने मे हाथकरघे पर चरखे का ही सूत बुना जाता था, किंतु मिलो के आगमन के बाद हाथ-करघे पर कपडा बुननेवाले बुनकर ज्यादातर मिल का सूत काम मे लाने लगे। इससे चरखा चलानेवालो का रोजगार मारा गया। अब यह कोशिश की जा रही है कि हाथकरघे चरखे का सूत अधिक-से-अधिक काम मे लाये। अवर चरखे का प्रयोग जैसे-जैसे बढेगा, वैसे-वैसे अधिक सूत मिलने लगेगा। इस समय देश मे हाथकरघो की सख्या करीब अट्ठाइस लाख है। इनमे से बीस लाख करघे सूती कपडा बुनते है, शेष ऊनी और रेशमी। हाथकरघो पर करीब एक करोड व्यक्तियो की रोजी निर्भर करती है। दूसरी पंचवर्षीय आयोजना मे हाथकरघा उद्योग के विकास के लिए साढे उनसठ

करोड रुपये की राशि रखी गई और उसके द्वारा एकसौ साठ करोड गज कपडा बनाने का लक्ष्य सोचा गया था। हाल के वर्षो मे हाथ-करघा-उद्योग ने अच्छी प्रगति की है और दूसरी आयोजना का लक्ष्य पूरा कर लिया है। उसने सन ५५ मे एकसौ सैंतीस करोड गज, सन ५६ मे एकसौ अट्ठावन करोड गज और सन ५७ मे एकसौ अडसठ करोड गज कपडा तैयार किया। देश को जितने कपडे की जरूरत है, उसका दो-तिहाई यानी करीब पाचसौ करोड गज कपडा मिलो मे तैयार होता है और शेप एक-तिहाई हाथकरघो और मशीनी करघो पर पैदा होता है। कपडा-मिलो के मुकाबले हाथ-करघा-उद्योग कही अधिक लोगो को रोजगार दे सकता है।

अबर चरखे का सूत

सरकार हाथकरघा-उद्योग की रक्षा करने और उसका विकास करने के लिए तरह-तरह से कोशिश कर रही है। उसने इस काम के लिए 'हाथकरघा बोर्ड' की स्थापना की है और कपडा-मिलो के उत्पादन पर एक कर लगा दिया है, जिससे प्रति वर्ष पाच करोड

रुपया मिल जाता है। यह रुपया हाथकरघा-उद्योग की विकास योजनाओ पर खर्च किया जाता है। उसके माल की बिक्री बढाने के लिए कीमत मे कुछ छूट भी दी जाती है और कुछ खास किस्म का कपडा हाथकरघो पर ही बुना जा सकता है। मिलो को वैसा कपडा बुनने से रोक दिया गया है। हाथकरघो पर अब तरह-तरह के नमूनो का और कारीगरी की दृष्टि से बहुत बढिया और सुदर कपडा बनने लगा है। उसकी न केवल देश मे, बल्कि विदेशो मे भी माग बढती जा रही है। हाथकरघा-उद्योग के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण कदम यह उठाया गया है कि बुनकरो की सहकारी समितिया सगठित की जा रही है। वे सहकारी समितिया अपने सदस्यो को सूत और सुधरे हुए औजार सुलभ करती है, तयार माल का सग्रह करके रखती है और उसकी बिक्री का प्रबध करती है। मार्च १९५८ के अत तक ऐसी सहकारी समितियो की सख्या साढे नौ हजार से ऊपर पहुच गई थी और ग्यारह लाख सैंतालीस हजार बुनकर उसके सदस्य बन गये थे। ये समितिया श्रमिको को बीच के लोगो के शोषण से बचाती है और उनको निरतर काम दिलाने का प्रबध करती है। इन समितियो को सरकार की ओर से अनुदान और कर्ज के रूप मे विशेष सहायता मिलती है। सरकार ने सन ५३ से ३१ मार्च १९५८ तक हाथकरघा-उद्योग पर उन्नीस करोड साठ लाख रुपया खर्च किया है। इस तरह हाथकरघा-उद्योग का भविष्य उज्ज्वल दिखाई पडता है।

देश मे अनेक किस्म के हाथकरघे प्रचलित है। पुराने करघो को खड्डी कहा जाता है। यह जमीन मे गड्ढा खोदकर बनाई जाती है, और बुनकर गड्ढे के अदर पाव लटकाकर कपडा

बुनता है। इस खड्डी मे एक हत्था, सूत के धागो की बय, बास की सीको की कघी, बाने की ढरकी और ताने तथा बुने हुए कपडे को लपेटने के साधन होते है। बुनकर अपने हाथ से बाने की ढरकी को ताने मे निकालता है। अब इन खड्डियो मे भी झटका-औजार लगाया जा रहा है, जिसकी मदद से बाने की ढरकी झटका लगते ही अपने-आप ताने मे से गुजर जाती है। यह झटका-करघा कहलाता है। देश मे इस करघे का उपयोग बढ रहा है। उनमे से २ से २४ जोडी तक बय होती है। ये ताने के सूत को इच्छानुसार ऊचा-नीचा करने का काम देती है। कपडा बुनने के लिए बुनकर को अनेक क्रियाए करनी होती है। सूत को खोलना, उसे नरियो पर भरना, ताने के बेलन पर लपेटना, सूत के धागो को बय की आखो और कघी मे से निकालना होता है। पहले हाथ से ही ताना बनाया जाता था, किंतु अब ताना तनने की एक मशीन बन गई है। सूत को मजबूत बनाने के लिए चावल के माड आदि का कलप देना पडता है। दूसरा तरीका सूत को बटने का है। इस काम की भी एक मशीन तैयार हो गई है। ऐसे करघे भी काम मे आ रहे है, जिनमे ढरकी की एक से अधिक पेटिया होती है। उनमे अलग-अलग रग का सूत लिपटा होता है और जरूरत के हिसाब से चाहे जिस ढरकी को झटके की मदद से ताने मे से गुजारा जा सकता है। एक ऐसा करघा भी बना है, जिसपर कातने से लगाकर कपडा बुनने तक की सारी क्रियाए हो सकती है। तरह-तरह के डिजाइनवाला कपडा बुनने के लिए डावी का आविष्कार किया गया है। यह लकडी और लोहे दोनो की होती है। डावी का सबध बय से जुडा होता है। एक लोहे की मशीन भी बनी है जिसे जैकार्ड मशीन कहते है। यह हाथकरघे पर लगा दी जाती है। कपडे का डिजाइन

पहले से एक कागज पर तैयार कर लिया जाता है और उसके अनुसार इस मशीन की मदद से चित्र-विचित्र कपडा बुनता जाता है। इस प्रकार हाथकरघे और उसके औजारो मे पहले की अपेक्षा बहुत सुधार हो गया है और होता जा रहा है। आजकल एक बुनकर हाथकरघे पर आठ घटे काम करके साधारणत चार गज कपडा बुन लेता है, किंतु सुधरे हुए करघे के प्रयोग से उसकी उत्पादन-क्षमता ड्योढी-दूनी हो जायगी। एक बुनकर २०० रुपये की पूंजी लगाकर डेढ रुपये से साढे चार रुपया तक प्रतिदिन कमा सकता है।

सूती कपडे की तरह ऊनी कपडा भी तैयार किया जाता है। ऊन के कबल, लोई, शाल-दुशाले, चादर, ट्वीड, पट्टू, आदि तरह-तरह के कपडे बुने जाते है। शाल-दुशालो पर कसीदाकारी का बढ़िया काम होता है। इसके लिए काश्मीर बहुत प्रसिद्ध है। हमारे देश मे भेडे पालने का रिवाज है। भेड़ के बालो को ही ऊन कहते है। साल मे तीन बार भेड के बाल काटे जाते है। इस ऊन को छाटा जाता है, धोकर साफ किया जाता है और उसे रुई की तरह धुनकर तकली और चरखो पर काता और करघो पर बुना जाता है। भारत मे प्रति वर्ष पांचसौ पैसठ लाख पौड ऊन पैदा होती है, किंतु उसका ज्यादातर हिस्सा कच्चे रूप मे ही विदेशो को भेज दिया जाता है। ऊनी कपडे की मिले भी कायम हो चुकी है, किंतु ऊनी कपडे तयार करने का काम कुटीर-उद्योग के रूप मे भी चल रहा है और सरकार उसे खादी और ग्राम-उद्योग आयोग द्वारा सरक्षण और बढावा दे रही है।

कपडे से सबधित एक और कुटीर-उद्योग कपड़ा रंगने और उसपर छपाई करने का है। यह उद्योग हमारे देश मे बड़े पुराने

जमाने से चल रहा है। इस काम को करनेवालो को रगरेज और छीपा कहा जाता है। राजस्थान और गुजरात मे रग-बिरगा छपा
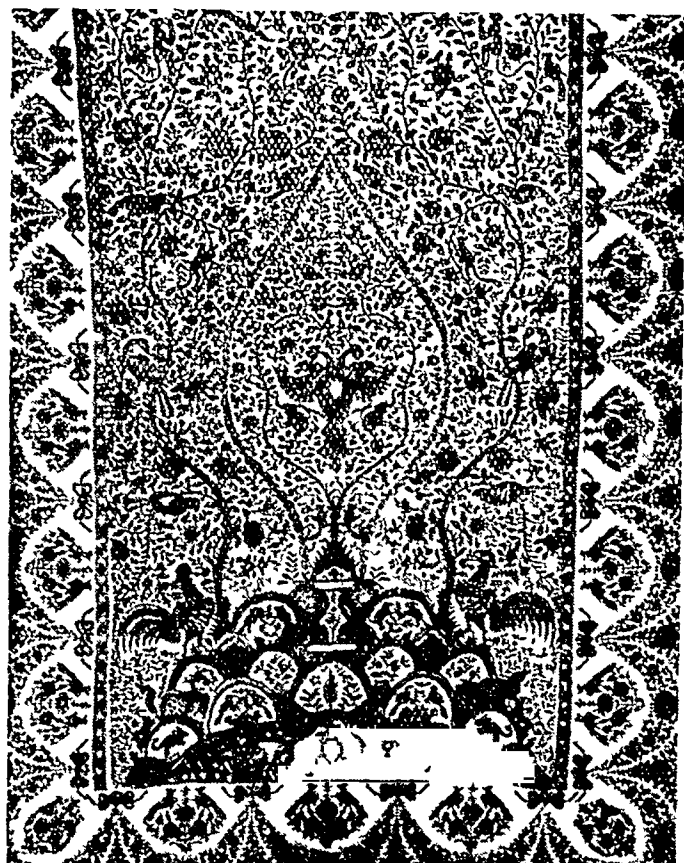
कपडा-छपाई का एक उत्कृष्ट नमूना

हुआ कपडा पहनने का विशेष रिवाज है, इसलिए यह कुटीर-उद्योग इन प्रदेशो मे काफी फूला-फला। दक्षिण भारत मे मछलीपट्टम और उत्तर प्रदेश मे फर्रुखाबाद छपाई के काम के लिए प्रसिद्ध

है। रगीन और छपा हुआ कपडा बडा आकर्षक लगता है। रगाई और छपाई के काम मे तरह-तरह के रगो और उनकी मिलावट का प्रयोग किया जाता है। छपाई मुख्यत चार प्रकार से की जाती है। पहले असली रग ही काम मे लाये जाते थे, किंतु अब तरह-तरह के कृत्रिम रगो का आविष्कार हो चुका है। छपाई के लिए तरह-तरह के नमूनो के बेल-बूटोवाले शीशम की लकडी के ठप्पे बनाये जाते है। रग की गद्दियो पर इन ठप्पो को लगाकर उनमे रग भरा जाता है और कपडे को मेज पर फैलाकर उसपर उसकी मदद से छपाई की जाती है। कपडे की रगाई और छपाई मे कई तरह के रासायनिक पदार्थ काम मे लाये जाते है। ठप्पो के अलावा कलम की मदद से भी छपाई की जाती है। सूती कपडे की तरह रेशमी कपडे को भी रगा और छापा जाता है। ठप्पो के सेट की कीमत दोसौ से पाचसौ रुपये तक होती है। सरकार ने पूना मे एक प्रयोगशाला स्थापित की है, जो रगाई और छपाई के विविध प्रयोग करती है और कारीगरो को शिक्षण देती है।

हमारे देश मे कालीन या गलीचे बुनने और दरी एव निवाड बुनने का कुटीर-उद्योग भी चल रहा है। उत्तर प्रदेश मे मिर्जापुर और भदोही गलीचा-उद्योग के मुख्य केंद्र है। काश्मीर मे भी काफी अच्छे गलीचे बनते है। गलीचो की विदेशो मे बडी माग है। सन १९५०-५१ मे साढे पाच करोड रुपये मूल्य के गलीचे विदेशो को भेजे गये। मुगल बादशाहो के जमाने मे यह उद्योग इस देश मे काफी विकसित हुआ। गलीचे बनाने मे ऊन, सूत और पटसन की डोरी काम मे आती है। उनको तरह-तरह के रगो से रगा जाता है और गलीचो पर तरह-तरह की चित्रकारी की जाती है। गलीचे काफी कीमती होते है। वे गुदगुदे होते है, फर्श पर

बिछाये जाते हे और बैठकखानो की शोभा बढाते है। गलीचो की ही तरह छोटे आसन भी बनाये जाते हे। गलीचा बुनने का करघा खडा होता है। जेलो मे कैदियो से गलीचा बुनने का काम भी लिया जाता है।

दरी और निवाड बुनने का कुटीर-उद्योग भी काफी पुराना हे। दरिया फर्श और पलग पर बिछाने के काम म आती है और निवाड से पलग बुने जाते है। दरी बुनने का एक अड्डा होता है, जिसपर करघे की तरह बुनाई होती है। दरियो मे तरह-तरह की रगीन धारिया डाली जाती है। चित्रकारी भी की जाती है। अब उसका रिवाज कम हो गया है। सूत को रगकर रगीन दरिया तैयार की जाती है। दरिया हल्की और भारी दोनो किस्म की होती हे। आगरा दरी-उद्योग का मुख्य केद्र है। निवाड बुनने का अड्डा गलीचे के करघे की तरह, कितु उससे छोटा होता है। निवाड भी कपडे की तरह ही बुनी जाती है। स्त्रिया फ़ुरसत के समय घरो मे यह काम करती हैं।

: ३ :

रेशम-उद्योग

रेशम का उद्योग हमारे देश का बहुत पुराना उद्योग है। रेशम के जन्म की कहानी बडी दिलचस्प है। रेशम एक कीडे के द्वारा पैदा किया जाता है। कहते है कि आज से करीब चार-पाच हजार वर्ष पहले चीन मे इस रहस्य का पता चला। चीन ने सैकडो वर्षो तक इस रहस्य को छिपाये रखा, किंतु धीरे-धीरे रेशम के कीडे एक ओर तुर्की, रोम, और यूनान पहुचे, तो दूसरी ओर कोरिया, जापान आदि पूर्वी देशो मे। इस तरह चीन को रेशम की जन्मभूमि कहा जा सकता है। रेशम का उद्योग चीन से भारत आया या स्वतंत्र रूप से यहा उसका विकास हुआ, यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता, किंतु हमारे प्राचीन साहित्य मे रेशमी कपड़ो का जिक्र मिलता है। आज तो कच्चा रेशम पैदा करनेवाले देशो मे भारत चौथे नबर पर है। यह उद्योग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे करीब पचास लाख ग्रामीणो को सहायक रोजगार दे रहा है।

रेशम की चार किस्मे होती है। जो कीडा शहतूत के पत्ते खाकर रेशम बनाता है, उसे शहतूती रेशम कहते है। टसर, एरी और मूगा रेशम की दूसरी किस्मे है। शहतूती रेशम मुख्यतः मसूर, पश्चिमी बगाल और काश्मीर मे होता है। गैर-शहतूती रेशम असम, बिहार, मध्य प्रदेश और उडीसा मे। टसर रेशम विशेष रूप से अमरीका को निर्यात होता है और उससे विदेशी

मुद्रा प्राप्त होती है। दूसरे युद्ध के समय भारतीय रेशम की माग बहुत बढ गई थी, क्योकि वह हवाई छतरिया बनाने के काम मे भी आता है। उस समय लाखो वर्ग गज रेशमी कपडा विदेशो को भेजा गया। कच्चे रेशम का निर्यात भी प्रति वर्ष बीस लाख पौड तक होने लगा था।

रेशम का कीडा अडे के भीतर से निकलता है। उसका जीवन-काल डेढ महीने का होता है। जब वह पैदा होता है, तो बाल बराबर मोटा होता है। शहतूत की पत्तिया खाकर वह बडा होता है। जन्म के समय से वह बारह हजार गुना बडा हो जाता है और अपने वजन से तीस हजार गुना पत्तियो को चट कर जाता है। रेशम के कीडे के दो ही मुख्य काम होते है—खाना और सोना। खाना बद करता है, तो सो जाता है। एक नीद निकालने के बाद वह अपनी झिल्ली को निकाल फेकता है। ऐसा वह अपने जीवन मे चार बार करता है। आखिरी बार झिल्ली उतारने के बाद वह रेशम कातना शुरु कर देता है और कोया बनाने लगता है। रेशम कातते-कातते वह कोये मे कैद हो जाता है। तीन दिन मे रेशम का कोया बनकर तैयार हो जाता है। आठ-दस दिन बाद कीडा कोये को चीरकर बाहर आ जाता है। किंतु उसका रूप बिल्कुल बदल जाता है। वह तितली जैसा हो जाता है। उसके बाद मादा कीट अडे देती है। शहतूती, मूगा और टसर के कीडो के कोयो मे से २०० से १२०० गज तक लबा रेशम का धागा प्राप्त होता है। एरी के कोयो मे जो कच्चा रेशम होता है, उसे कातना होता है।

रेशम के कोये को गरम पानी मे डाल देते है। कीडे को भीतर ही मार डालते है। अगर कीडा अपने-आप कोये को फोडकर बाहर आ जाता है, तो रेशम का धागा खराब हो जाता है। रेशम के

कीडो को बाकायदा पालना होता है। अडो की देखभाल करनी होती है, कीडो को उनकी खुराक यानी पत्तिया देनी पडती है, कोयो को सग्रह करके रखना पडता है और तरीके से उनमे से धागा निकालना होता है। यह धागा इतना बारीक होता है कि कई धागो को बटकर एक धागा बनाना होता है। इसके औजार बने हुए हे। बटे हुए धागो से ही करघे पर रेशमी कपडा बुना जाता है। देश मे रेशमी कपडा बुनने के करीब एक लाख करघे चल रहे है। रेशम के कपड़े को तरह-तरह के रगो से रगा जाता हे और उसपर छपाई भी की जाती है। इससे उसकी सुदरता और बढ जाती है। रेशमी कपडो को दूकानो मे सजा देखते हे, तो उसे पाने के लिए हमारा दिल ललक उठता है। सरकार ने रेशम-उद्योग का विकास करने के लिए एक केद्रीय रेशम बोर्ड की स्थापना की है और दूसरी पचवर्षीय आयोजना मे इस काम के लिए करीब चार करोड अडतालीस लाख रुपया रखा है। रेशम के कीडो की नस्ल को सुधारने, कीडो को खुराक के लिए शहतूत, अरड, कसरू, आदि उगाने, कीड़ो को ठीक ढग से पालने, रेशम का धागा निकालने और बुनने के सुधरे औजार काम मे लाने और इस उद्योग मे लगे हुए लोगों की सहकारी समितिया बनाने आदि विविध काम किये जा रहे है। मधुमक्खी की तरह रेशम का कीडा भी इस तरह मनुष्य का सेवक और कल्याणकर्ता बना हुआ है। वह कई लाख व्यक्तियों के लिए रोटी कमाने का साधन जुटाता है और लोगो को मनहर कपडा पहनने के लिए देता है। खुद अपनेको मिटाकर दूसरो को जिलाता है।

: ४ :

तेल-उद्योग

हमारे दश मे पुराने जमाने से तेल-उद्योग ग्राम और कुटीर-उद्योग के रूप मे चलता आ रहा था। गावो और कसबो मे तेली तेल पेरने का धधा करते थे, किंतु मशीनो के आगमन के साथ उस कुटीर-उद्योग को भी बुरे दिन देखने पडे। आज खादी और ग्राम-उद्योग आयोग इस कुटीर-उद्योग को पनपाने की कोशिश कर रहा है।

भारत मे तिलहन काफी मात्रा मे पैदा होता है। सारी दुनिया मे प्रति वर्ष एक अरब मन तिलहन पैदा होता है। उसमे से अकेला भारत चौदह करोड मन पैदा करता है। भारतीय तिलहनो मे मूग-फली, अरड के बीज, तिल, सरसो, अलसी आदि मुख्य है। कुछ तिलहन और तेल विदेशो को भेजा जाता है, कुछ रग-रोगन एव साबुन बनाने और दूसरे उद्योगो के काम मे आता है और बाकी खाने के उपयोग मे आता है।

अब देश मे बहुत सारी तेल-मिले कायम हो चुकी है। उनकी सख्या इस समय ७,५९७ है। उनमे ६,४०० छोटी मिले है। ऐसी मिलो की सख्या एक हजार से कुछ ऊपर है, जो बिजली से चलती है और जिनमे हरएक मे २० से अधिक व्यक्ति काम करते है। बड़ी और छोटी तेल-मिलो मे कुल मिलाकर एक लाख तीन हजार व्यक्तियो को रोजगार मिला हुआ है। सन १९११ की जनगणना के आकड़ो से पता चलता है कि उस समय तेल-मिलो का अभाव-

जाय और उद्योगो के लिए अखाद्य तेल काम मे लिये जाय। ऐसा होने पर देश के आहार मे चिकनाई की जरूरत पूरी हो सकेगी।

तेल-मिलो मे जो तेल पेरा जाता है, वह उसके ग्राहको तक कई हाथो मे होकर पहुचता है। इसलिए उसमे मिलावट की सभावना बढ जाती है। इसके मुकाबले गावो मे लोग तेल-घानी से अपनी जरूरत का तेल शुद्ध रूप मे प्राप्त कर सकते है। तेल-घानी को तिलहन मिलने की समस्या इस तरह हल हो सकती है कि किसान अपनी जरूरत के लायक तिलहन फसल के समय अपने पास बचाकर रख ले और उसे गाव के तेली को देकर तेल निकलवा ले। इस तरह तेली के परिवार का भरण-पोषण भी हो सकेगा और किसान-परिवार की शुद्ध तेल की जरूरत भी पूरी हो जायगी। इसके लिए तिलहन से तेल निकालने के बाद जो खली बच रहती है, वह पशुओ के लिए बहुत उत्तम खाद्य होता है। उसके अभाव मे पशु निर्बल हो रहे है।

खादी ग्रामोद्योग आयोग तेल-कुटीर-उद्योग के विकास के लिए अनेक योजनाओ पर अमल कर रहा है। एक नई तेल-घानी बनी है, जो 'वर्धा घानी' कहलाती है। दूसरी पचवर्षीय आयोजना के दौरान मे ऐसी पचास हजार सुधरी हुई वर्धा-घानिया तेलियो को दी जायगी। पुरानी घानियो की भी उचित मरम्मत की जायगी और तेलियो की सहकारी समितिया भी सगठित की जायगी और उनको इन समितियो का हिस्सेदार बनने के लिए विना व्याज रुपया उधार दिया जायगा। तेलियो को सुधरी हुई घानिया लगाने के लिए आर्थिक सहायता और विना सूद कर्ज दिया जायगा। देश मे सुधरी हुई घानियो के ४०० प्रदर्शन-केद्र स्थापित किये जायगे।

बढई का काम करनेवालो को सुधरी हुई घानिया बनाने का प्रशिक्षण दिया जायगा। तेली की सबसे बडी समस्या यह है कि जब तिलहन सस्ता होता है, तो उसे खरीदकर अपने पास नही रख सकता। सहकारी समितियो द्वारा इस समस्या को हल किया जा सकता है।

तेल-घानियो के खिलाफ यह शिकायत की जाती है कि वे तिलहन से तेल का पूरा अश नही निकाल पाती। सुधरी हुई तेल-घानी ने इस शिकायत को वहुत-कुछ दूर कर दिया है। साधारण घानी की तुलना मे इस सुधरी हुई घानी से तेल का प्रतिशत अश बढ गया है। पुरानी घानी की तुलना मे इस घानी में एक घान मे अधिक तिलहन डाला जा सकता है और उसको पेरने मे समय भी कम लगता है। वर्धा-घानी मे तिलहन मे से ४१ प्रतिशत तक तेल का अश निकल आता है। घानी के विभिन्न हिस्से लकडी के ही बनाये जाते है, किंतु ओखली सीमेट की भी वनाई जा सकती है।

तेल-कुटीर-उद्योग को सरक्षण देने के लिए सरकार ने तेल-मिलो पर सवा रुपया प्रति मन के हिसाब से एक टैक्स भी लगाया है। दूसरी पंचवर्षीय आयोजना मे उसके विकास के लिए छ करोड सत्तर लाख रुपया रखा गया है। शुद्ध आहार और लोगो को रोजगार देने की दृष्टि से यह उद्योग हमारे संरक्षण और समर्थन का अधिकारी है।

घानी एक वैल की मदद से चलती है। वैल को घानी के चारो ओर चक्कर काटना पड़ता है। इसलिए उसकी आख पर पट्टी बाध दी जाती है। तेली के वैल को ध्यान मे रखकर यह कहावत प्रचलित हो गई है कि 'नौ दिन चला अढाई कोस'। घानी मे पाच-

छ मुख्य हिस्से होते है। एक ओखली होती है और उसके नीचे के हिस्से मे कोठा होता है। इस ओखली मे ही तिलहन डाला जाता
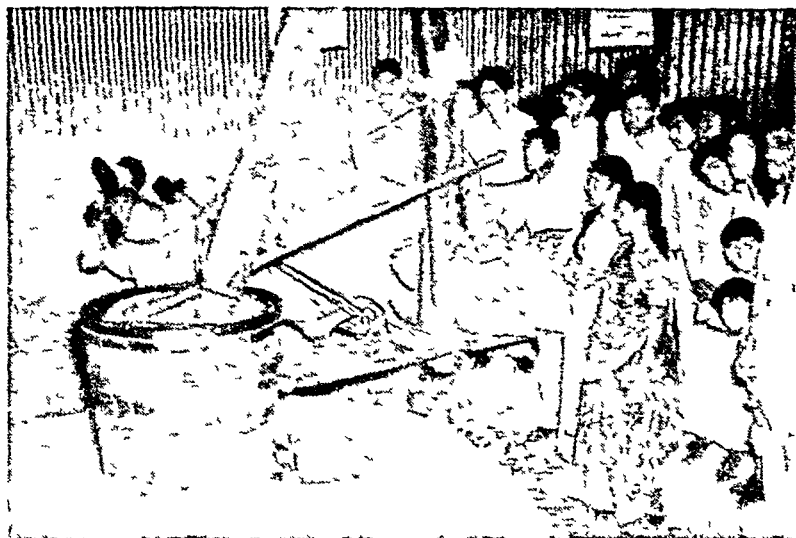
तेल-घानी

है। एक होती हैं लाट, जिसे मूसल भी कहते हें। इसकी मदद से तिलहन पेरा जाता ह। इसका ऊपर का भाग नुकीला होता और नीचे का फूला होता है। एक वाकुडी होती है, जिसकी मदद से लाट को वोझ-पाट के साथ जोड दिया जाता है और वैल इसी वोझ-पाट को खीचता है। वर्धा-घानी मे तिल निकालने की मुहरी और तिलहन को लाट के नीचे धकेलने के लिए एक समेटनी होती है। वर्धा-घानी पुरानी घानी का ही सुधरा हुआ रुप हें। इस घानी मे सव प्रकार के तिलहन पेरे जा सकते है। तेल-घानी के अलावा तेल निकालने के कुछ और तरीके भी है, जैसे पानी और भाप की

मदद से और रासायनिक घोल के जरिये भी तेल निकाला जाता है, किंतु ये तरीके ज्यादा प्रचलित नही है। खाद्य तेलो को शुद्ध भी किया जाता है, ताकि उनमे से हानिकर तेजाब और गध आदि दूर हो जाय। तेल को सुरक्षित रखने और खराब न होने देने के लिए भी कुछ उपाय काम मे लाये जाते है।

: ५ :

अखाद्य तेल और साबुन-उद्योग

हम यह कह चुके है कि देश मे खाद्य तेलो की कमी है और इसलिए जहातक सभव हो, खाद्य तेलो को उद्योगो के काम मे लेना ठीक नही होगा। उनको तो खाने के काम मे लेना ही लाभदायक होगा। अखाद्य तेलो से साबुन-उद्योग का काफी विकास हो सकता है।

प्रकृति की कृपा से देश के करीब-करीब हर हिस्से मे ऐसे पेड बहुतायत से मिलते है, जिनसे अखाद्य तिलहन मिल सकता है। इन पेडो मे नीम, महुवा, करज, अडी और खाकन मुख्य है। खाकन को पीलू भी कहते है। इसके अलावा भी और कई किस्म के पेडो से तिलहन मिल सकता है। मुश्किल यह है कि ये पेड बहुत दूर-दूर फैले होते है, और उनके बीजो को आसानी से जमा नही किया जा सकता। इसलिए अखाद्य तिलहन से बहुत कम मात्रा मे तेल निकाला जाता है। इस तरह का ज्यादातर तिलहन बेकार नष्ट हो जाता है। इस तरह राष्ट्रीय सपत्ति का नाश ही होता है। अगर इन अखाद्य तिलहनो को जमा किया जाय और उनका तेल निकाल-कर साबुन-उद्योग मे काम मे लाया जाय, तो हजारो आदमियो को रोजगार मिल सकता है। जो खाद्य तेल आज साबुन बनाने के काम मे आते है, उनकी बचत हो सकती है और उन्हे खाने के काम मे लिया जा सकता है।

इस समय काफी मात्रा मे खाद्य तेल साबुन, रग

रोगन बनाने और मशीनो आदि मे देने के काम म आता है। सन १९५२-५३ मे करीब बीस लाख मन खाद्य तेल साबुन बनाने मे, बारह लाख मन रग-रोगन बनाने मे और सात लाख मन मशीनो मे देने के काम मे लिया गया। खाद्य तेलो का औद्योगिक उपयोग बढता जा रहा है और उसे रोकने के लिए हमको अखाद्य तेलो की ओर झुकना पडेगा। करज का पेड मद्रास और मैसूर राज्यो मे विशेष रूप से पाया जाता है। अकेले मद्रास राज्य मे उनकी सख्या छत्तीस लाख अनुमान की जाती है। करज के एक पेड से औसतन २५ सेर बीज प्रति वर्ष प्राप्त हो सकता है और उससे ३५ प्रतिशत तेल निकाला जा सकता सकता है। करज का तेल चमडा कमाने के काम मे आता है, इस-लिए उसकी माग बढ रही है और इसलिए ग्रामीण तेल घानियो के अलावा छोटी तेल-मिले भी यह तेल पेरने का काम करने लगी है। आजकल नीम का तेल भी पेरा जाता है। वह कुछ तो दवाओ के और कुछ साबुन के काम मे आता है। अकेले मद्रास राज्य मे बीस हजार टन निबोली इकट्ठी की जाती है और उससे सोलह सौ टन नीम का तेल निकाला जाता है। किंतु इस राज्य मे बहत्तर हजार टन निबोली इकट्ठी की जा सकती है और उससे पाच हजार टन नीम का तेल प्राप्त किया जा सकता है। जरूरत इस बात की है कि अखाद्य तिलहनो को एकत्र करने का काम ठीक ढग से किया जाय और उनको नष्ट न होने दिया जाय। सन १९५५-५६ मे एक अदाजा लगाया गया था, उसके अनुसार अखाद्य तिलहन सग्रह करने मे बारह लाख व्यक्तियो को रोजगार मिल सकता है। अवश्य ही यह काम मौसमी है और पद्रह दिन से दो महीने मे पूरा हो जायगा। इसके अलावा तेल पेरने के काम

साठ हजार और साबुन बनाने के उद्योग मे तीस हजार व्यक्तियो को और काम मिल सकता है। अखाद्य तिलहन को इकट्ठा करने और उससे साबुन बनाने के एक नये ही ग्राम-उद्योग का विकास किया जा सकता है।

साबुन-उद्योग का हमारे देश मे काफी विकास हो सकता है। अभी हमारे यहा दूसरे देशो की तुलना मे साबुन की खपत बहुत कम होती है। सन १९५४ मे भारत मे प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष साबुन की खपत साढे बारह औस (छ छटाक) थी। पश्चिमी देशो मे एक व्यक्ति साल मे औसतन ४०० औस

साबुन-उद्योग

साबुन काम मे लेता है। दूसरी पचवर्षीय आयोजना के अत मे यह आशा की जाती है कि हमारे देश मे औसत खपत ३६ औस हो जायगी और उसके लिए देश मे तीन लाख टन साबुन का उत्पादन होना चाहिए। हमारे देश मे साबुन के बडे कारखानो की सख्या ५६ है और वे एक लाख नव्वे हजार टन साबुन तैयार कर सकते है।

किंतु उन्होने सन १९५५ मे केवल निन्यानवे हजार टन साबुन बनाया। अगर वे पूरी शक्ति से काम करे, तो भी साबुन बनाने के कुटीर उद्योग के लिए काफी गुजाइश बच रहेगी। साबुन बनाने मे मूग-फली, नारियल और महुए का तेल काम मे लिया जाता है क्योकि अखाद्य तेलो का रग ठीक नही होता है और उनमे दुर्गंध भी आती है। किंतु उनको शुद्ध किया जा सकता है और उसके बाद उनसे साबुन बनाया जा सकता है। साबुन बनाने मे अखाद्य तेलो के साथ थोडी मात्रा मे खाद्य तेल भी मिलाने होगे, किंतु उनकी मात्रा आज की अपेक्षा काफी कम की जा सकती है।

खादी-ग्राम-उद्योग आयोग ने अखाद्य तेलो मे नीम के तेल का काम हाथ मे ले लिया है। पहली आयोजना मे इस काम के लिए अठारह लाख रुपया रखा गया था और तेल पेरने के सात केंद्र स्थापित किये गये थे। साबुन बनाने का एक कारखाना भी कायम किया गया था। करीब एक लाख मन साबुन नीम के तेल से बनाया गया। आयोग अखाद्य तिलहन से तेल निकालने और साबुन बनाने के केंद्र कायम करने के लिए आर्थिक सहायता और कर्ज भी देता है। इस उद्योग की शिक्षा देने के लिए देश मे सात-आठ केंद्र चल रहे है और शिक्षार्थियो को छात्र-वृत्ति भी दी जाती है।

: ६ :

गुड़ और खांडसारी-उद्योग

पुराणो मे राजा त्रिशकु की कथा आती है। विश्वामित्र ऋषि ने इस राजा को अपने तपोबल से सदेह स्वर्ग पहुचा दिया था, किंतु देवताओ ने उसे स्वर्ग से वापस नीचे धकेल दिया। कहते है कि त्रिशकु स्वर्ग के बगीचे से गन्ने का पौधा ले आये थे। यही गन्ना हमको मीठे रस और मीठे पदार्थ देता है। शायद गन्ने की खेती सबसे पहले भारत मे ही शुरू हुई, क्योकि गन्ने का भारत के प्राचीन ग्रथो मे उल्लेख मिलता है। भारत की सस्कृति गुड को मागलिक पदार्थ मानती है, जो गन्ने के रस से ही बनता है। तरह-तरह की स्वादिप्ट मिठाइया हमको गन्ने की कृपा से ही मिलती है।

गुड और खाडसारी हमारे देश का एक महत्वपूर्ण कुटीर-उद्योग है। किसानो के लिए यह सहायक धधा है और यह करीब बीस लाख व्यक्तियो को रोजगार देता है। कोई दस हजार व्यक्ति तो अपनी रोजी के लिए पूरी तरह इसीपर निर्भर करते है। इस उद्योग मे आदमियो को ही नही, पाच लाख बैलो को भी काम मिलता है। यह उद्योग वर्ष मे तीन-चार महीने चलता है।

हमारे देश मे गन्ने की खेती करीब चालीस लाख एकड भूमि मे होती है। उत्तर प्रदेश मे सबसे अधिक गन्ना पैदा होता है और गुड भी सबसे अधिक वही बनता है। ५० प्रतिशत से भी अधिक गुड का उत्पादन उत्तर प्रदेश मे होता है। पहले तो गन्ने से गुड ही बनाया जाता था, किंतु अब देश मे अनेक चीनी-मिले कायम हो

गई है, जो सफेद दानेदार चीनी बनाती है। इन चीनी-मिलो की संख्या १६० के आस-पास है। किंतु देश मे जितना गन्ना पैदा होता है, उसका २५-३० प्रतिशत से अधिक चीनी-मिले काम मे नही ले पाती। गन्ने की पैदावार का ५५-६० प्रतिशत गुड बनाने के काम आता है और शेष २० प्रतिशत खाडसारी और बीज के लिए बचा रहता है। इससे हम अदाज लगा सकते है कि चीनी-मिलो के कायम होने के बाद भी गुड और खाडसारी उद्योग ही गन्ने की फसल के एक बहुत बडे हिस्से को काम मे लाता है। उससे ग्रामीणो के मीठे पदार्थ की जरूरत पूरी होती है। गावो मे कुछ समय से चीनी का प्रचार बढ रहा है, फिर भी गुड की खपत कम नही है। अवश्य ही चीनी की पैदावार बढने के साथ गुड का उत्पादन कम हो रहा है। सन १९३७-३८ मे गुड का उत्पादन सबसे अधिक यानी तैतालीस लाख टन हुआ था। हाल के वर्षो मे उसकी पैदावार अट्ठाईस और इकत्तीस लाख टन के बीच है।

गुड आहार की दृष्टि से चीनी की अपेक्षा अधिक लाभदायक पदार्थ है। उसमे गन्ने के रस मे पाये जानेवाले पोषक और खनिज तत्व करीब-करीब ज्यो-के-त्यो बने रहते है। हमारे देश मे दूसरे देशो के मुकाबले चीनी और गुड की खपत बहुत थोडी मात्रा मे होती है। उदाहरण के लिए प्रति व्यक्ति चीनी की खपत आस्ट्रेलिया मे १४३ पौड, अमरीका मे १०६ पौड, और ब्रिटेन मे ९२ पौड है, जबकि हमारे देश मे चीनी और गुड की खपत का औसत केवल ३६ पौड ही है। भोजन-सलाहकार-समिति का कहना है कि हमारे देश मे मनुष्यो को स्वस्थ रखने के लिए कम-से-कम प्रति व्यक्ति वर्ष मे ४५ पौड चीनी और गुड अवश्य ही मिलना चाहिए। लोगो की आर्थिक हालत सुधरेगी, तो वे पहले से ज्यादा मीठे

पदार्थो का उपयोग करेगे। इस तरह गुड और चीनी की खपत भी बढेगी और यह उद्योग विकसित हो सकेगा।

गुड और खाडसारी-उद्योग की मौजूदा हालत सतोषजनक नही कही जा सकती। आज जिन कोल्हुओ पर गन्ना पेरा जाता है, उनसे गन्ने का पूरा रस नही निकलता। परपरागत भट्टियो और कडाहो पर गुड बनाने का खर्च भी अधिक बैठता है और अच्छी किस्म का गुड तैयार नही होता। फिर गुड को सग्रह करके रखने और उसकी बिक्री करने का ठीक प्रबध नही है। इन कारणो से एक हिसाब के अनुसार इस उद्योग को साल मे चव्वन करोड रुपये का घाटा उठाना पड रहा है।

गुड और खाडसारी का आपस मे भाई-बहन का रिश्ता है। गुड की कीमते गिरने लगती है, तो खाडसारी बनाकर इस हानि को रोकने की कोशिश की जाती है। खाडसारी-उद्योग को चीनी-मिलो से कुछ विशेष सुविधाए मिली हुई है। खाडसारी चीनी से कुछ सस्ती बिकती है, किंतु गुड और चीनी के दामो मे जितना अतर है, उतना खाडसारी और चीनी के दामो मे नही होता। खाडसारी का उत्पादन सन १९५४-५५ मे एक लाख टन हुआ था, किंतु सन ५७-५८ मे वह बढकर तिगुना यानी तीन लाख टन हो गया। इससे मालूम होता है कि देश मे खाडसारी की माग बढ रही है। खाण्डसारी-उद्योग को मध्यम श्रेणी के लोगो ने अपनाया है, किंतु गन्ना-उत्पादक किसान भी अपनी सहकारी समितिया बनाकर इस उद्योग को अपने हाथ मे ले सकते है।

यह कहा जाता है कि गुड और खाडसारी-उद्योग के मुकाबले चीनी-मिलो मे गन्ने से अधिक रस प्राप्त किया जाता है और चीनी की मात्रा भी अधिक मिलती है। यह सही है। किंतु यह भी ध्यान

म रखने की बात है कि चीनी-मिलो मे चीनी बनाने के बाद जो शीरा बच रहता है, वह मनुष्यो के खाने लायक नही रहता। खाडसारी और गुड-उद्योग मे जो भी पदार्थ तैयार होते है, वे सब मनुष्यो के खाने योग्य होते है। चीनी-मिल मे १०० मन गन्ने से ९·८५ मन चीनी प्राप्त की जाती है, जबकि खाडसारी मे ५·२५ मन शक्कर, ३·५८ मन गुड और २ ६४ मन शीरा मिलता है, जिसका कुल योग ११ ४७ मन होता है। इस प्रकार १०० मन गन्ने से ११ मन गुड प्राप्त किया जाता है।

गुड़ और खाडसारी-उद्योग के विकास के लिए हमको कई बाते करनी होगी। गुड बनाने के लिए सुधरे हुए औजार काम मे लाने होगे और गुड़ बनाने के तरीके मे सुधार करना होगा। गुड को किस्म के अनुसार बाटना होगा और उसको सुरक्षित रखने के लिए अच्छे गोदामो की व्यवस्था करनी होगी, ताकि जब बाजार-भाव ठीक हो, तो उसे फायदे से बेचा जा सके। यह काम अकेले किसान के वश का नही है। वे सहकारी समितियो के रूप मे सगठित होकर इस उद्योग की हालत सुधार सकते है। खादी और ग्रामोद्योग आयोग गुड-उत्पादको की सहकारी समितियो को अनेक तरह से मदद देता है। वह सौ रुपये के शेयर (हिस्से) पर सत्तासी रुपये आठ आना बिना सूद उधार देता है। सुधरे हुए औजार देता है। विशेष किस्म के गोदाम बनाने और पूजी सुलभ करने के लिए कर्ज देता है। कार्यकर्ताओ को सुधरे हुए ढग से गुड बनाने की शिक्षा देता है। वे देहातों मे घूमकर लोगो को सुधरा हुआ तरीका बताते है। सरकार ने दूसरी पचवर्षीय आयोजना मे गुड और खाडसारी-उद्योग के विकास के लिए सात करोड रुपया रखा था।

: ७ :

ताड़-गुड़-उद्योग

प्रकृति ने मनुष्य की भलाई के लिए बिना मागे बहुत सी मूल्य-वान वस्तुए दी है। मनुष्य को भगवान ने जो बुद्धि दी है, उससे वह प्रकृति की इस देन की कीमत आक सकता है और उससे लाभ उठा सकता है। किंतु अपने अज्ञान या लापरवाही के कारण वह ऐसा नही कर पाता और प्रकृति की सपदा बेकार पडी रह जाती है, या नष्ट हो जाती है।

हमारे देश मे ताड और उससे मिलते-जुलते ऐसे पेड बडी सख्या मे मिलते है, जिनके रस से गुड बनाया जा सकता है। इस तरह के पेडो मे ताड, खजूर, सागो और नारियल मुख्य है। ताड-गुड बनाने के लिए मुख्यत ताड और खजूर के पेडो का ही उपयोग किया जाता है। हमारे देश मे गन्ने की खेती शुरू हुई, उससे पहले से लोग इन पेडो के रस से गुड बनाने की विधि जान गये थे और देश के कुछ भागो मे ताड-गुड उद्योग बडे पुराने जमाने से चला आ रहा है। यह उद्योग आजकल मद्रास, आध्र, मैसूर, केरल और पश्चिमी बगाल मे विशेष रूप से चलता है। अब उसे बबई, बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान आदि मे भी शुरू किया जा रहा है।

ताड और खजूर के पेड अपने-आप उगते है और उनकी कोई विशेष देखभाल नही करनी पडती। ऐसे पेडो की सख्या हमारे देश मे पाच करोड के आस-पास अनुमान की जाती है। किंतु गुड बनाने

के लिए केवल पच्चीस लाख पेडों का प्रयोग हो रहा है। पचास-साठ लाख पेड ताडी बनाने के काम मे आते है। बाकी पेड़ बेकार पडे रहते है। हिसाब लगाया गया है कि ५० पेडो के रस से साल मे औसतन १ टन (२८ मन) गुड तैयार किया जा सकता है। ताड-गुड का मौजूदा उत्पादन साठ हजार टन अनुमान किया जाता है। अगर देश मे पाये जानेवाले सभी ताड और खजूर के पेडों का उपयोग किया जाने लगे, तो ताड-गुड़ का उत्पादन पद्रह लाख टन तक बढ़ सकता है।

ताड-गुड-उद्योग बडी सख्या मे लोगो को रोजगार दे सकता है। ताड-वृक्षो से जो रस निकलता है, उसे नीरा कहते है। इसे गन्ने के रस की भांति कच्चा भी पिया जा सकता है। ताड-वृक्षो से नीरा एक खास मौसम मे ही प्राप्त होता है, इसलिए यह उद्योग सारे साल नही चल सकता—चार से छ' महीने तक चलता है। जो आदमी नीरा प्राप्त करने की कला जानता है, वह एक दिन मे २५-३० पेडो से निपट सकता है। इस समय ताड-वृक्षों से नीरा निकालनेवालो की संख्या डेढ लाख के लगभग है। उनके अलावा करीब एक लाख और व्यक्तियो को सहायक के रूप मे इस उद्योग मे रोजगार मिला हुआ है। यदि इस उद्योग का पूरा विकास हो जाय, तो उसमें बीस-पच्चीस लाख लोगो को काम मिल सकता है। सरकार ने इस उद्योग की रोजगार देने की क्षमता को देखकर ही उसे बढ़ावा देने का निश्चय किया है।

ताड के रस का उपयोग ताडी बनाने के काम मे भी किया जाता है। यह इसका दुरुपयोग ही है। ताडी एक प्रकार की शराब है, जिसके इस्तेमाल से आदमी पैसे की बरबादी तो करता ही है, अपने स्वास्थ्य का भी नाश करता है। हमारी सरकार

देश मे धीरे-धीरे नशाबदी की नीति अपना रही है। कानून द्वारा ताडी और दूसरी शराबे बनाने पर कुछ राज्यो मे रोक लगा दी गई है और दूसरी जगह भी ऐसा ही होगा। अत ताड-गुड-उद्योग का विकास सरकार की नशाबदी की नीति मे सहायक होगा।

देश मे चीनी और गुड की खपत बढ रही है। चीनी को विदेशी मुद्रा कमाने के खयाल से विदेशो को भेजने की जरूरत महसूस की जा रही है। गन्ने के गुड का भी विदेशो को निर्यात किया जा सकता है। अब चीनी और गुड की जरूरत पूरी करने के लिए हमको गन्ने की खेती बढानी पडेगी। इसका मतलब यह हुआ कि ज्यादा भूमि मे गन्ना बोना पडेगा। अभी चालीस लाख एकड भूमि मे गन्ने की खेती होती है। जब देश मे अनाज की कमी है तब अनाज पैदा करने की बजाय गन्ने की खेती को बढाना बुद्धिमत्तापूर्ण नही होगा। अगर पचास ताड-वृक्षो का गुड बनाने के लिए उपयोग किया जाय, तो एक एकड उपजाऊ भूमि को अनाज की खेती के लिए बचाया जा सकता है। इस हिसाब से पाच करोड ताड-वृक्षो का उपयोग करके हम दस लाख एकड भूमि को अनाज की उपयोगी खेती के लिए सुरक्षित कर सकते है।

गन्ना-गुड-उद्योग के मुकाबले ताड-गुड-उद्योग का अनेक सुविधाए हासिल है। ताड के वृक्षो की आयु ३० से ५० वर्ष की होती है और उनसे प्रति वर्ष रस प्राप्त किया जा सकता है। गन्ने की तरह उनकी खेती नही करनी पडती। गन्ने को पेरने के लिए जैसे औजारो की जरूरत होती है, वैसी ताड-गुड-उद्योग मे नही होती। ताड के रस को आसानी से शुद्ध किया जा सकता है। उसमे गन्ने के रस की तरह शीरा नही बचता। उसमे गन्ने के गुड की अपेक्षा शर्करा तत्व भी अधिक होता है। यही नही, ताड-गुड मे विटामिन

और पोषक तत्व भी ज्यादा पाये जाते है ।

ताड-गुड-उत्पादको को कुछ कटिनाइयो का भी सामना करना पड रहा है। भूमिहीन मजदूर ताड-वृक्षो से नीरा निकालते है। ये पेड या तो व्यक्तिगत जमीन मे होते है या सरकारी जमीन मे। इनके मालिक इन मजदूरो से काफी पैसा लेते है। कही-कही उपज का आधा भाग ले लेते है। फिर नीरा निकालने का लाइसेस लेना पडता है, जिसे प्राप्त करने मे कठिनाई होती है। आजकल ताड़-गुड-उत्पादन का खर्च अधिक पडता है और इसलिए वह गन्ने के गुड़ से महगा पडता है। सुधरी हुई भट्टियो को काम मे लिया जाय. तो ईधन के खर्च मे बचत हो सकती है। गुड के स्वाद और रग मे भी सुधार किया जा सकता है। ताड-गुड की बिक्री का भी समुचित प्रबध करना होगा। ताड-गुड-उत्पादक अभी असगठित है। कुछ राज्यो मे उनकी सहकारी समितिया सगठित की गई है। खादी ग्रामोद्योग आयोग इस उद्योग के विकास का प्रयत्न कर रहा है। उसने नमूने के उत्पादन और प्रशिक्षण केंद्रो की स्थापना की है। ताड-गुड-उत्पादक सहकारी समितियो और सस्थाओ को सहायता और कर्ज दिया जाता है। ताड-वृक्षो की देखभाल, उनके समुचित उपयोग और ताड-गुड बनाने के लिए सुधरे हुए औजार और तरीके काम मे लाकर इस उद्योग को काफी लाभदायक बनाया जा सकता है और बेकारी की समस्या को हल करने के साथ-साथ राष्ट्र की दौलत को बढ़ाया जा सकता है।

: ८ :

मधुमक्खी-पालन

अगर हमसे कोई पूछे कि खाने-पीने के मीठे पदार्थो मे सबसे बढिया पदार्थ कौन-सा है, तो हम बिना किसी सकोच के मधु अथवा शहद का नाम लेगे। हमारे देश मे हजारो साल से लोग शहद को काम मे लेते आ रहे है। जब हम अपने देश की खुशहाली की कल्पना करते है, तो कहते है कि हमारे यहा घी, दूध और शहद की नदिया बहा करती थी। शहद को यह महत्व उसके गुणो के कारण ही मिला है। वह अनेक रोगो को दूर भगाता है और शरीर को आवश्यक ताप, शक्ति और पोषण देता है। वैद्यक के ग्रथो मे इसकी वडी महिमा बखानी गई है। खाने मे स्वादिप्ट और गुणो से भरपूर यह पदार्थ आज हम लोगो को आसानी से और काफी मात्रा मे नही मिलता। दुनिया के दूसरे देशो मे शहद की औसत खपत बहुत ज्यादा है। वहा यह पैदा भी अधिक मात्रा मे किया जाता है। भारत मधुमक्खियो की जन्मभूमि समझा जाता है। उनका वश-विस्तार दुनिया मे यही से हुआ है। किंतु हम मधु-मक्खियो के पालन और शहद के उत्पादन मे दूसरे देशो से पिछड गये। उस कमी को हमे अब दूर करना होगा। पश्चिम के देशो मे मधुमक्खी-पालन की जो वैज्ञानिक विधि अपनाई गई है, उसे हमे भी अपनाना होगा। कुछ वर्पो से हमारे देश मे वैज्ञानिक ढग से मधुमक्खी-पालन का उद्योग शुरू हुआ है। उसे सबसे पहले दक्षिण भारत मे एक अमरीकी पादरी ने शुरू

किया था। उसने दूसरो को सिखाया। यह उद्योग अभी अपनी बाल्यावस्था मे है। उसका विकास करने की जिम्मेदारी खादी और ग्रामोद्योग आयोग ने अपने सिर पर ली हुई है और वह लोगों को मधुमक्खी पालने के लिए उत्साहित कर रहा है। उसका शिक्षण भी देता है। उपयुक्त क्षेत्रो मे यह उद्योग किसान के लिए सहायक धधा हो सकता है और एक मधुमक्खी-पालक इस उद्योग से साल मे डेढसौ-दोसौ रुपये की अतिरिक्त आमदनी कर सकता है।

भारत मे अनेक प्रकार की मधुमक्खिया पाई जाती हैं और उनके द्वारा तैयार किया गया शहद भी अलग-अलग किस्म का होता है। हमारे देश मे एक तो बडी मक्खी होती है। यह प्रचुर मात्रा मे शहद तैयार करती है। देश की शहद की उपज का ९० प्रतिशत भाग यही मक्खी पैदा करती है। वह एक जगह टिककर नही रहती। यह भयकर भी होती है। उसके काटने का परिणाम घातक होता है। यह पहाडो मे पाई जाती है। एक छोटी मक्खी होती है, जिसे पुष्प-मक्खी कहते है। यह भी आम तौर पर पाई जाती है, किंतु यह बहुत कम शहद बना पाती है। मधुमक्खी-पालक आम तौर पर जिस मक्खी को पालते है, उसे अग्रेजी मे 'एपिस इडिका' अर्थात् भारतीय मक्खी कहते है। यह काफी शहद इकट्ठा करती है। इन मधुमक्खियो की स्वाभाविक बस्तियो से एक छत्ते से वर्ष मे १५ पौड शहद प्राप्त किया जा सकता है। यदि उनको बनावटी मधु-घरों मे ठीक ढग से पाला जाय, तो प्रत्येक से एकसौ पौड तक शहद लिया जा सकता है।

जगलो और पहाडो मे मधुमक्खिया पेडो पर, चट्टानों की दरारो आदि मे अपने छत्ते बनाती है। इनसे लोग बडे बेढगेपन से

शहद प्राप्त करते है। मधुमक्खियो को मार देते है, जला देते है और छत्तो को इस तरह निचोडते हे कि मधुमक्खी के अडे-बच्चे भी नष्ट हो जाते है। मधुमक्खियो के लिए थोडा भी शहद पीछे नही छोडते, जो जरूरत के समय उनके काम आ सके। सोने का अडा देनेवाली मुर्गी की गरदन मरोड देने जैसी यह बात है। हाल के वर्षो मे लोग मिट्टी की हाडिया या लकडी के लट्ठो मे मधुमक्खी द्वारा तैयार किया गया मोम लगाकर मधुमक्खियो को पालने लगे है। किंतु शहद निकालने का तरीका वही बेढगा है। मधुमक्खी पालने का आधुनिक तरीका यह है कि मधुमक्खियो के रहने के लिए कई खडो और चौखटोवाला लकडी का घर बनाते है। इसमे नीचे-ऊपर चार खाने होते हे। उनको तख्ता, जाली या कपडा लगाकर एक दूसरे से अलग कर दिया जाता हे। सबसे नीचे-वाले खड मे मधुमक्खी के घुसने और निकलने के छेद बना दिये जाते है। तले के ऊपर का खाना मक्खियो व अडे-बच्चो के लिए होता है। इसे छत्ताधार कहते हे। इसमे मक्खिया अपने और अपने बच्चो के लिए भोजन रखती हे। ऊपर के चौखटो को शहद की कोठरिया कह सकते है। इनमे मक्खिया शहद इकट्ठा करती है। इस विधि से मधुमक्खियो के अडो-बच्चो की रक्षा की जाती है। उनके लिए
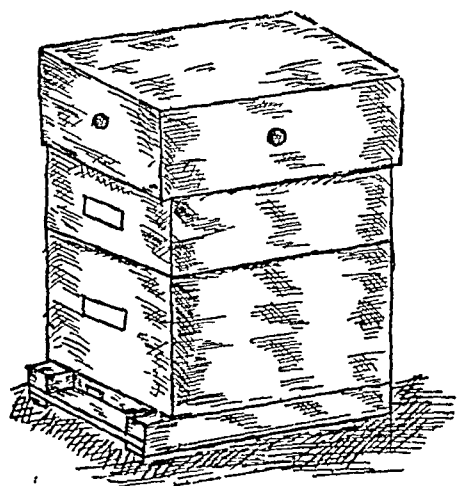
मधुमक्खियो का घर

ग्रामीणो को मधुमक्खी-पालन की शिक्षा देते है और मधुमक्खीघरो की देखभाल करते है। मधुमक्खी-पालको की सहकारी समितियो को कर्ज और सहायता भी दी जाती है। परपरागत ढग से शहद निकालने की विधि, शहद मे मिलावट और शहद के ऊचे दाम, इस उद्योग के विकास मे बाधक हो रहे है। किंतु जैसे-जैसे लोग इस उद्योग को अपनायेगे और अच्छे शहद के लिए बाजार सुलभ होगा, वैसे-वैसे यह उद्योग विकसित होगा और लोगो की तथा राष्ट्र की आय मे वृद्धि करेगा।

है। जो चावल-मिले रजिस्टर नही हुई है, अगर उनको भी जोड लिया जाय, तो उनकी कुल सख्या दस हजार तक पहुच जायगी। इसके बावजूद धान-हाथ-कुटाई-उद्योग अनेक कारणो से आज भी जीवित है। कुछ समय पहले तक ७५ प्रतिशत धान हाथ से कूटा जाता था, किंतु जब से सरकार ने खरीदी शुरू की और चावल मिलो से उसने कुटवाना शुरू किया, यह औसत घटकर ६० प्रतिशत ही रह गया है। इस समय चावल-मिले करीब डेढ करोड टन चावल की कुटाई कर रही है।

हाथ-कुटाई-उद्योग के विकास की बहुत अधिक गुजाइश है। चावल का औसत वार्षिक उत्पादन अगर दो करोड टन माना जाय तो उसमे से ६० प्रतिशत के हिसाब से एक करोड बीस लाख टन चावल अभी भी हाथकुटाई उद्योग के द्वारा तैयार होता है। एक मौसम मे ओसतन एक व्यक्ति दो टन चावल तैयार कर सकता है। इस हिसाब से हाथ-कुटाई-उद्योग मे साठ लाख व्यक्तियो को रोजगार मिल रहा है। अवश्य ही केवल मजदूरी के लिए बहुत कम आदमी इस काम को करते है। लोग अपने घर के उपयोग के लिए खुद धान कूट लेते है। फिर भी सन १९५१ मे दो लाख व्यक्ति धधे के रूप मे धान-कुटाई का काम करते थे। इसके मुकाबले चावल की रजिस्टर्ड मिलो मे केवल तिरेपन हजार व्यक्तियो को ही काम मिला हुआ था। यदि धान-कुटाई की औसत मजदूरी डेढ रुपया प्रति मन भी मान ली जाय, तो यह उद्योग ग्रामीणो को करीब पचास करोड रुपया वार्षिक की आमदनी कराता है। अगर देश मे पैदा होनेवाला सारा ही धान हाथ से कूटा जाने लगे, तो ग्रामीणो को तैंतीस करोड रुपये का और लाभ हो सकता है।

चावल-मिलो के मुकाबले हाथ-कुटाई उद्योग मे एक बडी

विशेषता है। हाथ-कुटाई की विधि से कम-से-कम तीन प्रतिशत चावल अधिक प्राप्त होता है। अगर सारा चावल हाथ-कुटाई की विधि से तैयार हो तो अभी की अपेक्षा तीन लाख साठ हजार टन चावल अधिक मिल सकता है। यह चावल करीब सत्तर लाख लोगो के लिए काफी होगा। इस समय जबकि देश मे अनाज की कमी है और लाखो टन अनाज विदेशो से मगाना पड रहा है, चावल की यह अतिरिक्त उपलब्धि काफी महत्व रखती है। उसके द्वारा हम करीब छत्तीस करोड रुपये की विदेशी मुद्रा बचा सकते है। चावल-मिलो मे मशीनरी अधिकतर हलर किस्म की है। उसमे चावल की काफी बरबादी होती है। जो भूसा वे निकालती है, उसमे अधिक मात्रा मे चावल के टुकडे रह जाते है। इस भूसे मे दूसरी भी दूषित चीजे रहती है। जानवर जब उसे खाते है तो उनपर उसका बुरा असर पडता है। इसलिए यह भूसा चावल-मिले ईधन के काम मे लेती है। दूसरे हलर मिलो मे बिजली का खर्च भी ज्यादा होता है। अत सरकार ने खुद स्वीकार किया है कि हलर मिलो को बन्द कर दिया जाय और उनकी जगह शेलर मिले कायम की जाय। किन्तु शेलर मिलो का भी ग्रामीणो के रोजगार पर असर पडेगा ही।

हाथ-कुटाई-विधि की श्रेष्ठता आहार-विशेषज्ञो ने भी स्वीकार की है। चावल मे विटामिन और दूसरे पोषक तत्व होते है, वे इस विधि मे सुरक्षित रहते है, जबकि चावल-मिलो मे उनका अधिकतर भाग नष्ट हो जाता है। कहा जाता है कि जब लोग सत्वहीन चावल खाते है, तो उससे 'बेरी-बेरी' रोग पैदा हो जाता है। चावल-मिलो ने चावल पर ज्यादा पालिश चढाकर लोगो की आदत को बिगाड़ दिया है। चावल पर जितनी अधिक

पालिश की जाती है, उतना ही उसका पोषक तत्व कम हो जाता है। हाथ-कुट चावल मे भले ही उतनी चमक न हो, किन्तु वह अधिक स्वादिष्ट और लाभदायक होता है। चावल के पोषक तत्वो की रक्षा करने के लिए उसे बनाते समय भी सावधानी रखनी चाहिए। चावल को बार-बार पानी से धोने और पकाने के लिए जरूरत से ज्यादा पानी चढाने और उस पानी को फैंक देने से चावल के आवश्यक तत्व नष्ट हो जाते है। चावल को मिलो मे पालिश कराने से पहले उबालने का रिवाज है। इस विधि से चावल के पोषक तत्वो की थोडी रक्षा जरूर होती है। किन्तु हाथ-कुटाई की विधि ही इसके लिए सर्वश्रेष्ठ है।

हाथ-कुटाई-उद्योग मे भी सुधार करने की जरूरत है। इसके लिए सुधरे हुए औजार दाखिल करने होगे। औजारो मे एक तो हाथचक्की चाहिए, जो चावल के छिलके को अलग कर सके। दूसरे, भूसे और चावल को अलग करने के लिए पखा चाहिए। तीसरे, चावल पर पालिश करने के लिए ढेकी की जरूरत होती है। खादी और ग्रामोद्योग आयोग ने इस उद्योग के विकास का काम हाथ मे लिया है। उसने सुधरे हुए औजार तैयार कराये है और उन्हे कम खर्च पर ग्रामीणो को सुलभ किया जाता है। हाथकुटा चावल बेचने के डिपो भी शहरो मे खोले जा रहे है। अगर खादी और ग्रामोद्योग का कार्यक्रम सफल हो जाता है, तो छब्बीस लाख व्यक्तियो को और रोजगार मिल जायगा और एकसौ चौरासी करोड़ रुपया वार्षिक उनमे वितरित होने लगेगा। उत्पादको की सहकारी समितिया भी सगठित होनी चाहिए। सहकारी समितियो को आयोग कर्ज और काम चलाने के लिए पूजी सुलभ करेगा, ताकि मौसम पर धान जमा किया जा सके और गोदाम मे हाथ-कुटाई के

बाद चावल का सग्रह करके रखा जा सके। वैसे धान-कुटाई का धधा चलाने के लिए विशेष पूजी की आवश्यकता नही होती। कुल ३०० रुपये की पूजी से काम चल जाता है और एक श्रमिक बारह आने से सवा रुपये तक रोज कमा सकता है। दूसरी पच-वर्षीय आयोजना मे सरकार ने इस उद्योग के विकास के लिए पाच करोड रुपया रखा है। सरकार हाथ-कुटे चावल पर प्रति मन छ आना की आर्थिक सहायता भी देती है। सरकार ने यह भी स्वीकार किया है कि चावल-मिलो को लाइसेंस दिये जाय और विना विशेष कारणो के नई चावल-मिले खुलने न दी जाय और न मौजूदा मिलो की क्षमता को ही वढाया जाय। धान-हाथ-कुटाई उद्योग मे लोगो को रोजगार देने, चावल के पोषक तत्वो की रक्षा करने और अतिरिक्त चावल उपलब्ध करने की जो क्षमता है, उसको देखते हुए सरकार को उसे पोषण और सरक्षण देना ही चाहिए। जनता भी हाथकुटे चावल को अपनाकर ग्रामीणो की भलाई करने के साथ-साथ अपना भी फायदा कर सकती है।

: १० :

चमड़ा-उद्योग

गाव का चमडा-उद्योग एक प्रमुख कुटीर उद्योग है। इस उद्योग को चमार, रेगर, महार आदि हरिजन-जातिया करती है। मवेशियो की खाल को उतारना, उनको कमाकर चमडा तैयार करना और जूते और चमडे की दूसरी चीजे बनाना इस उद्योग का मुख्य काम है। इधर कुछ शहरो मे चमडे के बडे कारखाने भी कायम हो गये है, किंतु यह उद्योग अभी मुख्यत कुटीर-उद्योग के रूप मे ही चल रहा है। देश मे जितनी खाले तैयार होती है, उनमे १०० मे से ८८ खाले कुटीर-उद्योग द्वारा तैयार होती है। जूत बनाने का काम भी ज्यादातर घरेलू तौर पर ही होता है।

हमारा देश विशाल पशुधन का स्वामी है। सन १९५१ की पशु-गणना के अनुसार गाय-भैसो की सख्या ही बीस करोड के लगभग है। आठ करोड के करीब भेड-बकरिया है। पशुओ की वार्षिक मृत्यु औसतन ११ प्रतिशत अनुमान की जाती है। इस हिसाब से एक करोड पैसठ लाख गायो की और सैतालीस लाख भैसो की खाले मिलती है। भेड-बकरिया और छोटे बछडो की खाले इससे अलग है, जिनकी तादाद अस्सी लाख के लगभग है। पशुओ की खालो को कच्चे रूप मे या अधूरी कमाकर विदेशो को भी भेजा जाता है। करीब पच्चीस करोड रुपये के मूल्य की खाले हर साल विदेशो को भेजी जाती है। यदि इनको अच्छी तरह से कमाकर विदेशो को भेजा जाय तो अस्सी करोड रुपया कमाया जा सकता है। इस

तरह इस समय देश को पचपन करोड रुपये वार्षिक का घाटा हो रहा है।

चमड़े का उद्योग

चमडा-उद्योग मे करीब सात लाख व्यक्तियो को काम मिला हुआ है। चमडे के बड़े कारखानों मे केवल इकत्तीस हजार मजदूर काम करते है। गाव का चमडा-उद्योग करीब साढ़े छ लाख व्यक्तियो को रोजगार दे रहा है, लेकिन गावो के चमड़ा-उद्योग मे काम करनेवालो की सख्या पिछले वर्षो मे बराबर घटती जा रही है। इस उद्योग मे काम करनेवालो को समाज हीन दृष्टि से देखता है,

और उनको तरह-तरह की कठिनाइयो का सामना करना पडता है। इसीलिए इस उद्योग का आवश्यक विकास नही हो पाया।

पशुओ की खाल उतारने और चमडा कमाने के तरीके मे सुधार करने की बडी आवश्यकता है। पशु के मरने के बाद उसकी खाल जल्दी-से-जल्दी उतार ली जानी चाहिए, अन्यथा वह सड-कर खराब हो जाती है। आजकल मरे हुए पशुओ की दूसरी चीजो जैसे मास, चरबी, हड्डी, सीग आदि को योही नष्ट होने के लिए छोड दिया जाता है। वे गीध और चीलो आदि की खुराक बनती है और बेकार नष्ट होती रहती है। मरे हुए पशुओ की हड्डी, मास और चरबी आदि का ठीक तरह से उपयोग किया जाय, तो प्रति वर्ष सात करोड रुपया कमाया जा सकया है। हड्डी को पीसकर बहुत बढिया खाद बनाया जा सकता है। चरबी साबुन बनाने के काम मे आ सकती है। हड्डियो को पकाकर जिलेटिन और सरेस बनाया जा सकता है। मास को जमीन मे गाडकर खाद बना सकते है। सीगो के खिलौने, हत्थे और दूसरी चीजे बनाई जा सकती है। पशु जीते-जी तो आदमी के काम आता ही है, मरने के बाद भी वह उसके लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकता है। अगर उसकी सब चीजो का ठीक तरह से उपयोग किया जाय, तो इस उद्योग मे लगे हुए लोगो की आमदनी मे खासी बढोतरी हो सकती है।

खाल उतारने के काम को बहुत होशियारी से करने की जरू-रत है, वरना वह बिगड जाती है। इसके लिए अच्छी छुरी लेनी चाहिए और ठीक ढग से चीरना चाहिए ताकि वह बिना तोड-मोड के उधड जाय और उसपर निशान या धब्बे न पडे। पशुओ को गोदने या दागने से खाले खराब हो जाती है, इसलिए यह रिवाज बद होना चाहिए। खाल को उतार लेने और उसकी

मास चरबी अलग करने के बाद सुखाया जाता है। सुखाना इस तरह चाहिए कि उसमे सिकुडन न पडे। इसके लिए खाल मे सिरो पर छेद करके उसे रस्सी से लकड़ी के चौखटे पर कस देते है। खालो पर नमक भी लगाया जाता है। नमक लगाने से खाले खराब नही होती। नमक लगाकर उनको सुखा लिया जाता है और फिर बेच दिया जाता है।

खालो को कमाकर चमडे का रूप देने के लिए अनेक क्रियाएं करनी पडती है। सूखी हुई खालो को पानी के हौजो मे डाला जाता है। उससे वे नरम पड जाती है। उसके बाद खालो को चूने के पानी के हौज में कई दिन तक डाले रखना पडता है। उसके बाद चूना अलग करने के लिए उनको तेजाब के पानी के हौज मे डाला जाता है। खाल को रगने के लिए उसे कुछ दिन हर्र के पानी मे डाला जाता है। गावों मे चमडा कमाने के लिए आम तौर पर वनस्पति का उपयोग किया जाता है। उत्तर भारत मे इसके लिए बबूल की और दक्षिण भारत मे अवरम की छाल काम मे ली जाती है। आजकल इन पेडो की छाल काफी मात्रा मे नही मिलती, इसलिए वत्तल की छाल काम मे ली जाने लगी है, जो अफ्रीका से मगाई जाती है। खालो को हौजो मे डालकर और थैले बनाकर दोनो ही तरह से कमाते है। गावो मे ज्यादातर थैलो का तरीका काम मे लेते है। खाल को सीकर थैलीनुमा बना लेते है और उसमे पानी के साथ बबूल या वत्तल की छाल भर देते है। इस तरह उनमे से पानी टपकता रहता है। खाल पर छाल का रग भी चढ जाता है। थैली से कमाया चमडा हल्का होता है और हौज का कमाया हुआ भारी। पहला नाप के और दूसरा वजन के हिसाब से। चमड़ा कमाने मे डेढ-दो महीने का समय लग जाता

है। साधारण तौर पर चमार और रेगर साल मे इक्यानवे लाख गाय-भैसो का चमडा इस तरीके से कमाते है, जिसका मूल्य युद्ध के पहले के हिसाब से साढे तीन करोड रुपये के लगभग होता है। बडे कारखानो मे खनिजो की मदद से चमडा कमाया जाता है, जिसे क्रोम पद्धति कहते है।

गाव के चमडा-उद्योग का महत्व सरकार ने स्वीकार किया है। उसके विकास के लिए दूसरी पचवर्षीय आयोजना मे पाच करोड रुपया रखा गया है। खादी ग्रामोद्योग आयोग इसके विकास मे तरह-तरह से मदद दे रहा है। उसने कार्यकताओ के ऐसे दल सगठित किये है, जो एक केद्र मे कुछ दिन ठहरते है और इस उद्योग मे काम करनेवालो को खाल उतारने तथा उनको कमाने के सुधरे हुए तरीको की शिक्षा देते है। उसने शिक्षा-केद्रो की भी स्थापना की है, जिनमे इस उद्योग की शिक्षा दी जाती है। खाल और चमडे के व्यवसाय मे दलालो का बडा हाथ है और इस कारण असली उत्पादको को पूरा लाभ नही मिलता। चमडा-उद्योग-श्रमिको की सहकारी समितिया सगठित करके उनको यह उद्योग अच्छी तरह और लाभ के साथ चलाने मे समर्थ बनाया जा रहा है। खादी ग्रामोद्योग आयोग खाल निकालने, चमडा कमाने और हड्डी पीसने के केद्र स्थापित करने के लिए आर्थिक और कर्ज की सहायता देता है। ग्रामीण चर्मकारो को हौज बनाने और उनकी मरम्मत करने के लिए भी आर्थिक सहायता देता है। बिक्री-भडारो की स्थापना मे मदद देता है।

भारतीय खालो और चमडे की विदेशो मे बडी माग है, विशेषकर छोटे पशुओ के हल्के चमडे की। यह चमडा मद्रास राज्य मे बडी मात्रा मे तैयार होता है। देश के भीतर भी चमडे

की चीजो का उपयोग बढता जा रहा है। अत अगर इस उद्योग का ठीक-ठीक विकास हो, तो उसमे और भी अधिक लोगो को

चमडे का कलापूर्ण जूता और चप्पल

काम मिल सकता है। भारत तैयार माल, जैसे जूत, बटुए, सूटकेस, आदि विदेशो को भेज सकता है और विदेशी मुद्रा कमा सकता है।

यह उद्योग देश की दौलत को बढाने और श्रमिको की हालत सुधारने मे काफी हाथ बटा सकता है। यह बडे कारखानो के मुकाबले अबतक जीवित रहा है और भविष्य मे भी रह सकता है, सिर्फ उसमे बुद्धि और श्रम लगाने की जरूरत है।

: ११ :

हाथ-कागज-उद्योग

कागज-उद्योग हमारी सभ्यता की निशानी है। हम अपने विचारो को एक-दूसरे तक पहुचाने के लिए कागज की ही मदद लेते है। कागज के द्वारा ज्ञान को फैलाया और सुरक्षित रखा जाता है। किताबे, अखबार आदि कागज पर ही छापे जाते है। उद्योग-धधो को चलाने मे भी कागज काम मे आता है। आज हम यह सोच भी नही सकते कि कागज के बिना हमारा काम चल सकता है।

कागज बनाने की कला का आविष्कार आज से दो हजार वर्ष पहले चीन मे हुआ। वहा से वह यूरोप के देशो मे गई। हमारे देश मे पहले लोग कुछ खास तरह के पेडो की छाल और पत्तो को लिखने के काम मे लेते थे। उनको ताल पत्र और भुर्जपत्र कहते है। जब मुसलमान हमारे देश मे आये, तो अपने साथ कागज बनाने का उद्योग भी लाये। पुराने जमाने मे कागज बहुत थोडी मात्रा मे काम मे लिया जाता था। किंतु जबसे छापाखानो का आविष्कार हुआ है, कागज की खपत बहुत बढ गई है और बढती ही जा रही है।

कागज पहले हाथ से और मामूली औजारो की मदद से बनता था। यह तरीका हमारे देश मे ही नही, बल्कि दूसरे देशो मे भी जारी है। किन्तु जब कागज की माग बढी और बडी मशीनो की मदद से कागज बनने लगा, तो हाथ-कागज-उद्योग को बडा

धक्का लगा। कागज-मिलो मे बना कागज सस्ता और अच्छा होने के कारण हाथ से बना कागज उसके मुकाबले मुश्किल से ही टिक सकता था, किंतु इसमे कुछ ऐसी विशेषताए है, जो मिलो के कागज मे नही होती। वह बहुत मजबूत और टिकाऊ होता है। तीन-तीनसौ वर्ष पुराना हाथ का बना कागज उसके असली रूप मे मिला है। उसकी बनावट और किस्म मे कुछ भी खराबी नही आई। हाथ-कागज हिसाब की बहियो, धर्मशास्त्रो, जन्मपत्रियो, जमीन-जायदाद के दस्तावेजो आदि के काम मे आता है। पश्चिम के औद्योगिक देशो मे अभी भी हाथ से कागज बनाया जाता है। वहा हाथकागज पर नोट छापे जाते है और दस्तावेज लिखे जाते है। पश्चिमी देशो मे हाथकागज-उद्योग मे आधुनिक तरीके अपना लिये गये है, इसलिए वह आज भी जीवित है। हमारे यहा इस उद्योग की हालत दिन-प्रति-दिन गिरती जा रही थी। महात्मा गाधी ने हाथकागज-उद्योग को फिर से जीवन-दान दिया और अब खादी ग्रामोद्योग आयोग उसका विकास और विस्तार करने की कोशिश कर रहा है।

हमारे देश मे अभी कागज की खपत बहुत कम हो रही है। अमरीका मे साल मे प्रति व्यक्ति कागज की औसत खपत २८४ पौड है, ब्रिटेन मे १५० पौड और स्वीडन मे २४ पौड है, जबकि हमारे देश का औसत सिर्फ १.९ पौड है। जैसे-जैसे शिक्षा का प्रसार बढेगा, वैसे-वैसे कागज की माग बढेगी। हमारे देश मे कागज की कुल खपत साल मे एक लाख चालीस हजार टन अनुमान की जाती है। इसका ज्यादातर भाग देश की कागज-मिलो मे ही तैयार होता है, किंतु हमको विदेशो से भी कागज मगाना पड रहा है। देश की कागज की जरूरत को पूरा करने मे हाथकागज-उद्योग

भी हाथ वटा सकता है। हाथकागज बनाने के देश मे अनेक केद्र चल रहे है। किंतु उनका उत्पादन अधिक नही है। हाथकागज उद्योग का वार्षिक उत्पादन ४०० टन के आस-पास होगा और उसमें कोई दो हजार व्यक्तियो को रोजगार मिल रहा होगा। इस उद्योग का विकास हो, तो और आदमियो को रोजगार मिल सकता है।

कागज बनाने के लिए मुख्यत: रेशेवाली वनस्पति काम मे ली जाती है। कागज-मिलो मे बास और सवई घास का खासतौर पर उपयोग होता है। किंतु गावो के आस-पास और जगलो मे ऐसी बीसियो तरह की वनस्पति होती है, जो थोडी मात्रा मे मिलती है। उसका इकट्ठा होना और मिलो तक पहुचना मुश्किल होता है। लेकिन हाथकागज-उद्योग मे उसका स्थानीय रूप मे उपयोग हो सकता है। वनस्पति के अलावा, कपडो की कतरन, पुराने चिथडे, रस्सिया, बोरिया, टूटी टोकरिया, चटाइया और रद्दी कागज भी कागज बनाने के काम मे आ सकते है। कागज बनाने के लिए कच्चे माल को छोटे-छोटे टुकडो मे काट लिया जाता है। उसे पानी मे डालकर अथवा उबालकर अच्छी तरह गलाया जाता है। तब उसकी लुगदी तैयार हो जाती है। उसे साफ पानी मे धोया जाता है। लुगदी को सफेद बनाने के लिए ब्लीचिंग पाउडर का इस्तेमाल करते है। फिर लुगदी की कुटाई की जाती है। इसके लिए एक ढेकी काम मे ली जाती है। लुगदी की कुटाई के लिए एक मशीन भी बनी है, जिसे बीटर मशीन कहते है। वह लुगदी की कुटाई अच्छी तरह से कर देती है। लुगदी को पानी के हौज मे घुलाया जाता है। कागज उठाने के साचे से लुगदी-मिश्रित पानी उठाया जाता है, तो कागज वन जाता है। लकड़ी का एक चौखटा

होता है, जिसके बीच मे जाली लगी होती है। इसीको कागज उठाने का साचा कहते है। उससे कागज की परते तैयार होती
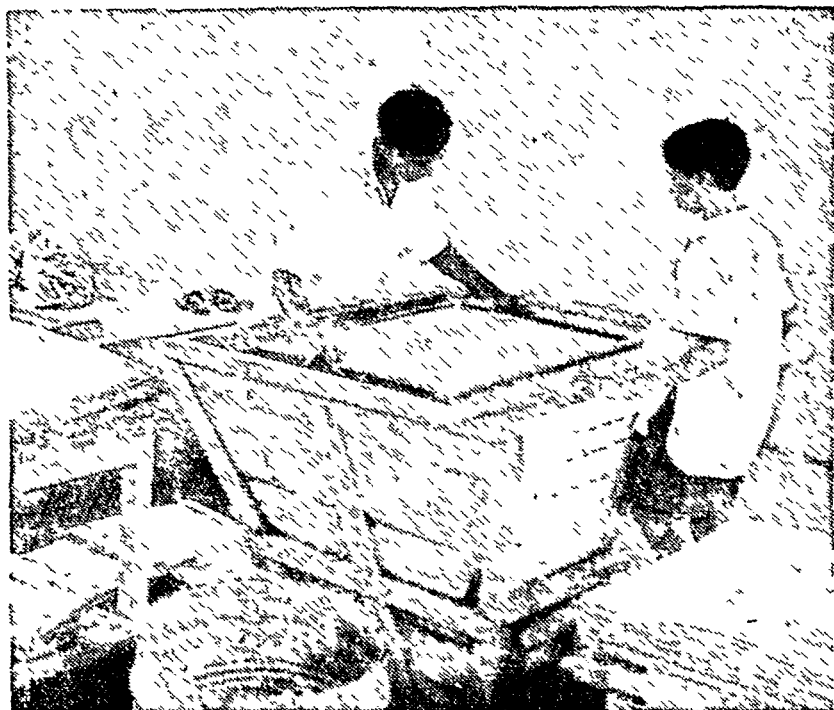
हाथ-कागज का उद्योग

जाती है। उनको सुखाया जाता है। उसके बाद कागज को चिकना बनाने के लिए उसपर कलफ लगाया जाता है। यह काम माड, सरेस, बैरोजा या केसीन की मदद से किया जाता है। फिर कागज की घुटाई की जाती है। इसके लिए बडी कौडिया, शख, चिकने काच या पत्थर के टुकडे काम मे लिये जाते है। कागज की घुटाई करन और उसकी पालिश करने के लिए एक छोटी मशीन भी

काम मे ली जाती है। इसके अलावा कागज को काटने और दबाने की मशीने भी बनी है।

हाथकागज-उद्योग को चलाने के लिए बडी पूजी की जरुरत नही होती। वह कुटीर-उद्योग के रूप मे चल सकता है और घर के सव लोग उसमे हाथ बटा सकते हे। इसके लिए कच्चा माल आसानी से मिल सकता हे। एक कुटीर केद्र दो हजार की पूजी से चल सकता है। हाथकागज बनाने के बडे, मध्यम आकार के और छोटे सभी प्रकार के केद्र चलाये जा सकते हे और यह उद्योग दस्त-कारी के रूप मे स्कूलो और जेलो मे भी जारी किया जा सकता है। इस उद्योग के केद्र के लिए अगर मकान पक्का हो और बिजली और पानी काफी मात्रा मे मिल सके, तो काफी सहूलियत हो सकती है। खादी-ग्रामोद्योग आयोग हाथकागज बनाने के केद्रो को मकान बनाने और सुधरे औजार प्राप्त करने के लिए कर्ज और सहायता दोनो देता है। इस उद्योग का शिक्षण लेनेवालो को वह छात्रवृत्तिया भी देता है। तैयार माल की बिक्री मे घाटा हो, तो उसकी सहायता देकर पूर्ति करता है और माल की बिक्री म मदद देता है। शिक्षित व्यक्ति भी इस उद्योग को सीखकर अच्छा रोजगार पा सकते है और देश को एक बडी जरूरत को पूरा करने मे सहायक हो सकते है।

: १२ :

कुम्हारी-उद्योग

कुम्हारी उद्योग गावो का बहुत पुराना कुटीर उद्योग है। वह गावो और शहरो की मिट्टी के बर्तनो की जरूरत पूरी करता है। ग्रामीण कुम्हार जो बर्तन आदि बनाता है, वे गावो मे आस-पास बिक जाते है। गावो मे खाना पकाने, परोसने, सामान रखने और पानी भरने के बर्तन आम तौर पर मिट्टी के होते है। सन १९५१ की जनगणना मे कुम्हारी का काम करनेवालो की सख्या ३,६०,००० दी गई है। इसके अलावा एक लाख पच्चीस हजार व्यक्ति ईंटे टाइल, कवेलू, पाइप आदि इमारती चीजे बनाने का काम करते है। कुम्हारो मे से कुछ मिट्टी के खिलौने, फलो और सब्जियो की आकृतिया और मूर्तिया आदि बनाते है। लखनऊ का कुम्हारी शिल्प इसके लिए प्रसिद्ध है। कहते है कि हमारी इस सृष्टि की रचना ब्रह्माजी ने की है। उनको प्रजापति भी कहा जाता है। कुम्हार भी मिट्टी की नाना प्रकार की आकृतिया बनाता है, इसलिए उसे भी लोगो ने प्रजापति का नाम दे दिया है।

कुम्हार को साल मे पूरे समय काम नही मिल पाता। वर्षा का मौसम तो उसके काम के लिए बिल्कुल ही उपयुक्त नही। वह साल मे छ महीने ही काम कर पाता है। कुम्हार-परिवार की औसत मासिक आमदनी ४० रुपये के आसपास होती है और वह भी साल मे छ ही महीने। अत उसे बहुत ही गरीबी का जीवन

बिताना पडता है। पहले के जमाने में किसान फसल पकने पर उसे अनाज दे देते थे, और वह उनको उनकी जरूरत के बर्तन दे देता
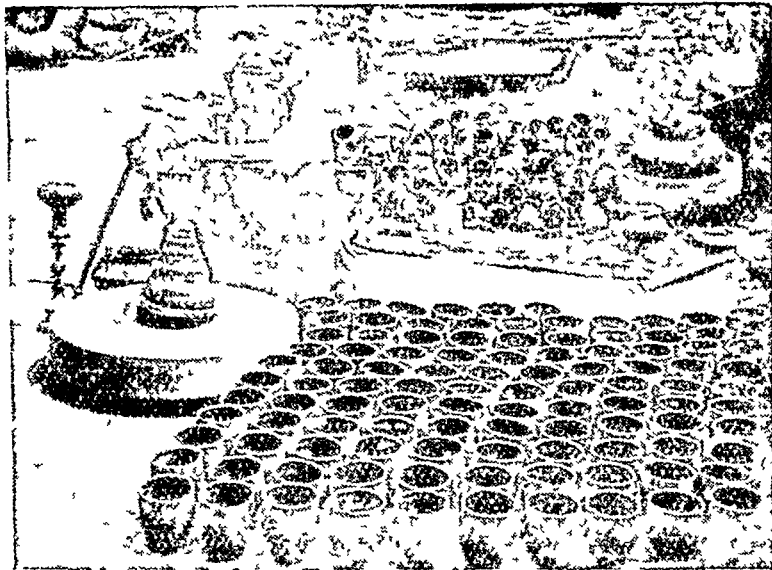
काम में संलग्न कुम्हार

था। इस तरह दोनों का काम निकल जाता था। शहरो में कुम्हार के बर्तन बहुत सस्ते विकते है। उसे इन बर्तनों को बनाने में मेहनत भी काफी करनी पडती है। अगर वह अच्छी किस्म के कलापूर्ण बर्तन बनाये, तो वे महगे पडेगे और उनकी अधिक बिक्री नही होगी। इसलिए भी कुम्हार अपनी कला का विकास नही कर पाता। फिर जबसे धातु और कारखानो मे बने पालिश और बिना पालिश के चीनी के बर्तन बाजार मे आये है, कुम्हारी उद्योग को और भी धक्का लगा है। अब प्लास्टिक के बर्तन चल पडे है। यदि कुम्हार के धधे को जीवित रखना है, तो उसके औजारो मे और काम के तरीके मे सुधार करना होगा। उसे संगठित करना

होगा और उसके माल की बिक्री का प्रबध करना होगा।

कुम्हार को अपने काम के लिए सबसे पहले ठीक प्रकार की मिट्टी प्राप्त करनी होती है। कुम्हार का मुख्य औजार उसका चाक होता है। उसका परपरागत चाक बहुत साधारण और भारी होता है। पूना की प्रयोगशाला ने एक सुधरा हुआ चाक निकाला है, जिसकी कीमत १५०-३०० रुपये के बीच मे है। यह रस्सी की मदद से घुमाया जाता है और चाक के कीले को मिट्टी के बर्तन समेत घूमती हुई हालत मे बाहर निकाला जा सकता है।

मिट्टी से निर्मित सुदर वस्तुए

किंतु कुम्हार सुधरा हुआ औजार काम मे लेने के लिए आसानी से तैयार नही होता। उसे अपना पुराना औजार ही प्यारा लगता है। फिर उसकी गरीबी भी उसे नया ओजार नही खरीदने देती। चाक के अलावा पाइप, टाइल वगैरा बनाने के सुधरे हुए लकडी के

साचे भी तैयार किये है। चाक पर कुम्हार पहले बर्तनो को आकार देता है। फिर उन्हे अपने कुशल हाथो की मदद से अतिम रूप देता है। उनको सुखाता है और बाद मे भट्टी के आवे मे रखकर पकाता है। कुम्हारो का यह भी स्वभाव है कि वे अपनी कला दूसरो को नही सिखाते और इस तरह बहुत-सी पुरानी कला का लोप हो गया है। अगर बर्तनो को अतिम फिनिश देनेवाली चीजो और रग-रोगन का सामान उन्हे एक जगह से मिले और वे उसका उपयोग सीख ले, तो वे अपने उत्पादन मे काफी सुधार कर सकते है।

खादी और ग्रामोद्योग आयोग ने कुम्हारी-उद्योग को भी अपने सरक्षण मे ले लिया है। उसने एक केंद्रीय और कुछ क्षेत्रीय प्रशिक्षण-केंद्र खोले है। कई कुम्हार मिलकर अगर एक केंद्र चलाये, तो वह उन्हे स्थान सुलभ करता है। ऐसे केंद्र को कर्ज और औजार देता है। जिस जगह कुम्हार अधिक सख्या मे रहते हो, वहा सुधरे हुए तरीको का प्रदर्शन भी कराता है। कुम्हारो की सहकारी समितियो को और कुम्हारी काम करनेवाली सस्थाओ को कर्ज देता है। बिक्री-केंद्रो को उनकी बिक्री के अनुपात से आर्थिक सहायता देता है। इन सब उपायो से वह इस पुराने ग्राम-उद्योग को जीवित रखने और पोषण देने का प्रयत्न कर रहा है। गावो के जीवन मे उसका अभी भी अपना स्थान है और जबतक मिट्टी के बर्तनो की माग रहेगी, वह मर नहीं सकता।

: १३ :

दियासलाई-उद्योग

दियासलाई हमारे रोज के काम मे आनेवाली चीज है। दियासलाई पहले विदेशो से आती थी, किंतु सरकार ने विदेशी दियासलाइयो पर टैक्स लगाकर उनका आना रोक दिया। उसके बाद स्वीडनवालो ने देश के भीतर ही दियासलाई बनाने के कारखाने खोले। इस समय देश मे दियासलाई के अनेक कारखाने चल रहे है, जिनको उनकी उत्पादन मात्रा के हिसाब से तीन श्रेणियो मे बाटा गया है। उनसे सरकार अलग-अलग उत्पादन-कर लेती है। बडे कारखानो की सख्या केवल ७ है, किंतु वे देश की दियासलाई की जरूरत का ७० प्रतिशत पूरा करते है। दूसरे मध्यम आकार के कारखाने है, जिनमे कुछ काम मशीनो से और कुछ हाथ से होता है। उनकी सख्या ८८ है। तीसरी किस्म के कारखाने वे है, जिनमे मशीनो का प्रयोग नही होता। बडे कारखानो के मुकाबले के कारण शेष दो किस्म के कारखानो की सख्या पिछले वर्षो मे कम हुई है, हालाकि उनका उत्पादन बढा है। उनको जितना माल तैयार करने का लाइसेस मिला है, उसके हिसाब से तो वे २०-२२ प्रतिशत माल ही तैयार कर रहे है। तीसरी श्रेणी के कारखानो की हालत तो दूसरी श्रेणी के कारखानो से भी बुरी है।

खादी ग्रामोद्योग आयोग इन तीनो श्रेणियो के कारखानो की गिनती कुटीर उद्योग मे नही करता। तीसरी श्रेणी के कारखाने

को भी अपनी उपज को खपाने के लिए अपने आस-पास के क्षेत्र से दूर बाजार खोजना पडता है। इसलिए वह चाहता है कि देश मे दियासलाई बनाने के ऐसे केन्द्र कायम किये जाय, जिनकी उत्पादन-क्षमता २५ ग्रास प्रति दिन तक सीमित हो। ये केंद्र अपने आस-पास की जरूरत को पूरा करेंगे और उनका स्वरूप पूरी तरह कुटीर-उद्योग का होगा। दियासलाई बनाने के ऐसे केंद्र मे पाच आदमी पूरे समय के लिए काम कर सकते है और ५४ आदमियो को तीलिया बनाने, बक्स बनाने और उनको भरने का

दियासलाई की तीलिया तैयार की जा रही है

थोडे समय का काम मिल सकता है। दियासलाई चाहे बडे कारखानो मे तैयार हो, चाहे हाथ से बनाई जाय, दोनो की किस्म मे कोई अतर नही पडता। मशीनो से बननेवाली दियासलाई पर उल्टे खर्च अधिक बैठता है। इस समय हाथ से बनी दियासलाई बाजार मे मशीन से बनी दियासलाई के साथ-साथ एक ही कीमत पर बिक रही है और उनमे कोई फरक नही किया जा सकता।

इस तरह दियासलाई के उद्योग को कुटीर उद्योग के रूप मे बदला जा सकता है और बडी तादाद मे लोगो को उनके घरो मे सहायक रोजगार दिया जा सकता है। बडे कारखानो मे दियासलाई के लिए सेमल की नरम लकडी काम मे ली जाती है। इसके कारण जगल उजड रहे है। दियासलाई के कुटीर-उद्योग मे सेमल की लकडी के बजाय बास काम मे लिया जा सकेगा। बक्सो के लिए घास से बने कागज के पुट्ठे का उपयोग हो सकेगा।

खादी ग्रामोद्योग आयोग दियासलाई का कुटीर-केंद्र कायम करने के लिए सहायता और कर्ज दोनो ही देगा। वह दियासलाई-उद्योग के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था करेगा। यह प्रशिक्षण केंद्रीय स्थान मे दिया जायगा और उसके लिए छात्रवृत्तिया भी दी जायगी। घूमनेवाले शिक्षक भी इस काम की विभिन्न केंद्रो मे शिक्षा देगे। बिक्री-केंद्र कायम करने के लिए भी सहायता दी जायगी। सरकार बडे कारखानो पर यह रोक लगा सकती है कि वे अपनी उत्पादन-क्षमता न बढाये। दियासलाई के कुटीर-केंद्रो के उत्पादन को उत्पादन-कर से मुक्त रखना होगा। इस तरह दियासलाई का यह कुटीर-उद्योग बेकारी की समस्या को हल करने मे सहायक हो सकेगा।

× × ×

इसके अलावा खादी ग्रामोद्योग आयोग ने रेशा-उद्योग के विकास का काम भी अपने हाथ मे लिया है। हमारे देश मे ऐसा कई तरह का कच्चा माल मिलता है, जिसमे से रेशे मिलते है। इन रेशो को कातकर या बटकर तरह-तरह की रस्सिया, दरवाजो के पर्दे, चटाइया, कपास और गुड के थैले आदि बनाये जा सकते है। आयोग इन कामो का प्रशिक्षण कुछ नौजवानो को देगा। वे बाद

मे गाव-गाव जाकर ग्रामीणो को यह् धधा सिखायेगे ।

देश मे इन मुख्य ग्राम और कुटीर-उद्योगो के अलावा तरह-तरह् की दस्तकारिया, जैसे हाथीदात की चीजे, बर्तनो की नक्काशी, जरी का काम, सीग और हड्डियो की चीजे, कागज के खिलौने, सगमरमर का काम, चादी-सोने के जेवर आदि चल रही हे । इन कला-कौशल की चीजो की न केवल देश मे बल्कि दूसरे देशों मे भी माग है और भारतीय कारीगरो की निपुणता की सराहना की जाती है । उनके विकास के लिए दूसरी पचवर्षीय आयोजना मे नौ करोड रुपया रखा गया है ।

: १४ :

उपसंहार

खादी, हाथकरघा और दूसरे मुख्य ग्राम-उद्योगो का ऊपर जो वर्णन किया गया है, उससे पाटक यह भली-भाति समझ सकेगे कि उनमे लोगो को लाभदायक रोजगार देने की कितनी बडी ताकत छिपी हुई है। अपनी मौजूदा हालत मे भी वे लाखो आदमियो को रोजगार दे रहे है और उनके तथा उनके परिवार के लोगो के मुह मे रोटी का निवाला पहुचा रहे है। बेकारी और गरीबी को खत्म करना आज देश की सबसे बडी समस्या है। इस समस्या को ग्रामोद्योग बडी अच्छी तरह हल कर सकते है। इसीलिए सरकार ने पहली पचवर्षीय आयोजना मे उनके विकास पर तीस करोड रुपया खर्च किया और दूसरी पचवर्षीय आयोजना मे उनके लिए दोसौ करोड रुपये की विशाल राशि रखी है। खादी ग्रामोद्योग आयोग की स्थापना करके यह काम उसके सिपुर्द किया है।

सबसे महत्वपूर्ण प्रगति खादी के काम मे हुई है। सन १९५३ के पहले खादी का उत्पादन एक करोड गज से कम होता था, किंतु अब वह चार करोड गज से ऊपर पहुच गया है। पहले इस उद्योग मे काम करनेवाले कतवारो, बुनकरो और अन्य कारीगरो की सख्या तीन लाख साठ हजार थी, जो अब बढकर ग्यारह लाख एक्यावन हजार हो गई है। दूसरे शब्दो मे, पाच वर्षो मे आठ लाख व्यक्तियो को और रोजगार मिला है। इसमे उन लोगो की तादाद शामिल नही है, जो अपने कपडे की जरूरत पूरी करने के लिए

खुद कातते है। उनकी सख्या पाच लाख के लगभग होगी। अबर चरखे के आविष्कार ने तो खादी के काम मे क्राति ही ला
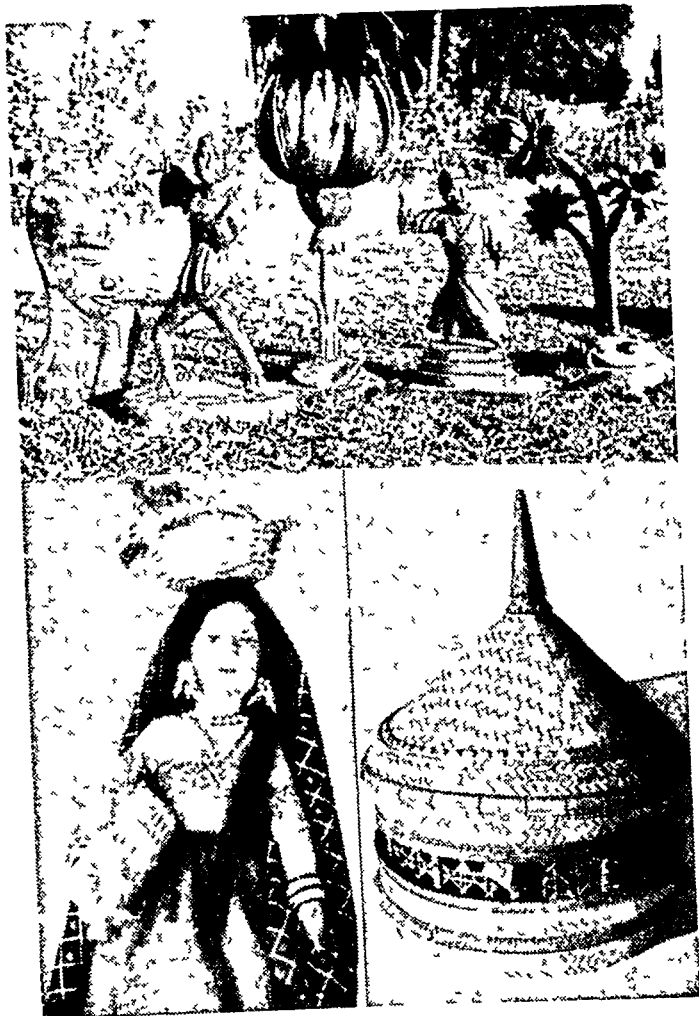
दस्तकारी के आकर्षक नमूने

दी है। उसपर साधारण चरखे के मुकाबले अधिक और अच्छा सूत कतता है और कतवार को ज्यादा मजदूरी मिल सकती है।

केवल दो वर्षों मे अंबर चरखे के कारण एक लाख सडसठ हजार आदमियो को रोजगार मिला और उनको करीब पौने दो करोड रुपये मजदूरी के रूप मे बाटा गया।

खादी के अलावा अन्य ग्रामोद्योगो मे, जिनका ऊपर जिक्र किया गया है, करीब छ लाख लोगो को और रोजगार मिला है। उनमे दो लाख सैंतीस हजार को पूरे समय का और तीन लाख सत्तावन हजार को कुछ समय का रोजगार मिला। खादी के अलावा ग्रामोद्योग का उत्पादन सन ५७-५८ मे करीब पद्रह करोड रुपये मूल्य का हुआ।

ग्रामोद्योग और कुटीर उद्योग विकेंद्रित उद्योग है। उनको थोडी पूजी से और सीधे-सादे औजारो की मदद से चलाया जा सकता है। वे लाखो-करोडो आदमियो को रोजगार दे सकते है। ग्रामोद्योगो के औजारो मे सुधार किया गया है और किया जा रहा है, कितु उनका कुटीर-उद्योग का रूप कायम रहना चाहिए। भारत की ज्यादातर आबादी गावो मे रहती है। खेती के अलावा ग्रामोद्योगो की मदद से उसको खुशहाल बनाया जा सकता है। जिनकी कुछ भी आमदनी नही है या थोडी आमदनी है, उनकी आमदनी बढा सकते है। ग्रामोद्योगो की चीजो को काम मे लेकर हम गाव के लोगो मे नया जीवन पैदा कर सकते है, उनको आत्म-निर्भर बना सकते है।

'मंडल' का ग्रामोपयोगी प्रकाशन

ग्राम-सेवा (गाधीजी) ०.३७

ग्राम-सेवा के सवध मे दिशा-दर्शक विचार

गाव-सुखी, हम सुखी (विनोबा) ०.३७

गाव मे सुखी रहने के उपाय

गांव के उद्योग-धधे (शोभालाल गुप्त) ०.२५

ग्रामोद्योगो की प्रगति बतानेवाली पुस्तक

ग्राम-सुधार (ओमप्रकाश त्रिखा) १.२५

ग्रामोत्थान के विविध उपायो का विवरण प्रस्तुत करनेवाली ग्रामोपयोगी पुस्तके

हमारे गाव की कहानी (रामदास गौड़) १.५०

इस पुस्तक मे भारतीय गावो का प्रारभ से लेकर वर्तमान काल तक के इतिहास का वर्णन है। इसमे वताया गया है कि ब्रिटिश शासन ने किस प्रकार ग्राम-जीवन को तहस-नहस कर दिया।

खादी द्वारा ग्राम-विकास (प्रभुदास गांधी) ० ७५

एक स्वावलवी गाव का चित्र। रचनात्मक कार्यकर्त्ताओ के लिए उपयोगी।

खेती के साधन (डा. नारायण दुलीचंद व्यास) १.२५

खेती के विविध साधनो का ज्ञान तथा उनका उपयोग बतानेवाली पुस्तक।

खाद और उसके उपयोग (शंकरराव जोशी) ३.००

विभिन्न खादो तथा भिन्न-भिन्न फसलो मे उन खादो के उपयोग का विस्तृत ज्ञान करानेवाली पुस्तक।

चारादाना (परमेश्वरीप्रसाद गुप्त) ० २५

चारादाना और उसके खिलाने की रीति

पशुओ का इलाज (परमेश्वरीप्रसाद गुप्त) ० ५०

पशुओ मे फैलनेवाले सक्रामक रोग और छोटी-छोटी बीमारियो की चिकित्सा विधि ।

इनके अलावा 'मडल' की अन्न, दलहन, तिलहन, साग-भाजी, फल, कपास, तम्बाकू, सन आदि की खेती की जानकारी देनेवाली ग्रामोपयोगी पुस्तको के लिए लिखिए।

सस्ता साहित्य मंडल

नई दिल्ली